|| श्रीनाथजी ||

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः || श्री गोवर्द्धननाथो विजयते ||

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ||

श्रीमत्प्रभुचरण (श्रीगुसांईजी) कृत

|| नवविज्ञप्ति-स्तोत्र ||

|| प्रथम-विज्ञप्ति ||

किया‌न्पूर्वं जीवस्तदुचितकृतिश्चापि कियती |
भवान्यत्सापेक्षो निजचरणदाने बत भवेत् ||
अतः स्वात्मानं स्वं निरूपममहत्वं व्रजपते |
समीक्ष्यास्मन्नेत्रे शिशिरय निजास्याम्बुरसैः ||१||

हे व्रजनाथ ! कहाँ तो यह जीव ही कितनों तुच्छ है और इस दुष्ट जीव की कृति कैसी है, जो कि अपने दोष भी निवृत्त नहीं कर सके हैं | सो प्रियतम कहाँ अपनो चरणारविन्द दैवे में जीव की अपेक्षा करौगे ? सर्वथा नहीं ! यासूं प्यारे अपनी उपमा रहित महिमा कूँ देखकें, आपकी विरह अग्नि सूँ सन्तप्त जो हमारे नेत्र हैं, इनकूँ अपने मुखारविन्द के रस सूँ शीतल करौ ||१||

स्वदोषाज्जानामि स्वकृतिविहितैः साधनशतै |
रमेद्यान्स्त्यक्तुं चाप्टुन्त्तरमना यद्यपि विभो ||
तथापि श्रीगोपीजनपदपरागांचितशिरा-
स्त्वदीयोऽस्मीति श्रीब्रजनृप न शोचामि मुदितः ||२||

हे सर्व समर्थ ! अपने दोषन कूँ मैं जानूँ है | अपनी कृति से किये हुए सैकड़न साधन सूँ भी निवृत्त करवे में असमर्थ मन वारे

हैं । श्री गोपीजन के चरण मकरन्द सूँ अभिषिक्त शिर वारी मैं आपकी हूँ, तासूँ सोच नहीं करूँ हूँ, प्रसन्न हूँ ।।२।।

धृतं यदर्थे वपुरेतदासीत्तदिच्छया यद्भविता तदस्तु ।
प्रभो कृपालो यदि रोचते ते विज्ञापनीयं न कदापि किंचित् ।।३।।

हे प्राणनाथ ! हम आपके लिए देह धारण किये हैं, सो आपकी इच्छा से जो होय सो होय । हे प्रभु ! आप कृपालू हो, जो रुचै सो करौ । हमकूँ किसी समय में कुछ भी प्रार्थना नहीं करनी है ।।३।।

यमं तरेण क्षणमप्यशक्यं यो मन्यमानः स दिनान्यमूनि ।
नयामि तेनापि बिना यदित्थं किमस्ति कापट्यमितोऽधिक मे ।।४।।

हे नाथ ! आपके संयोग में यह विचार होंतौ हतौ कि आपके वियोग में एक क्षण भी कैसे बीतेगौ । सो हे नाथ ! आपके बिना इतने दिन बीत गये और बीते जाँय हैं, सो जासूँ बढ़कें अधिक कपट और कहा होयगौ ।।४।।

आसारैः पीडितं स्वं व्रजमवितुमधादाशुगोवर्द्धनाद्रिं ।
दावाग्नेदह्यमानं तमपिबदमितोऽसह्य भक्तार्तिभीतिः ।।
गोपस्त्रीविप्रयोगानलमुपसमयन्नेति गोष्ठं दिनांते ।
सोऽपि श्रीगोकुलेशः किमिति करुणया मामिहोपेक्षतेस्वम् ।।५।।

हे नाथ ! आप ऐसे दयालू हो, जा समय इन्द्र कोप करकें व्रज कूँ डुबाइवे के तांई वृष्टि करवे लग्यौ, तब श्री गिरिराजजी धारण कर रक्षा करी । दावानल जरायवे आयो, वाकौ पान कियौ । हा नाथ ! भक्तन कै क्लेश आप सहन नहीं करौ हौ । श्रीगोपीजन के विप्रयोग रूपी अग्नि कूँ शान्त करवे के ताई

आप वन में सन्ध्या को पधारो हो। हा निःसाधन गोकुल के स्वामी ! मैं आपकी हूँ। करुणा सूँ क्यों नहीं अपनाऔ हो ? उपेक्षा क्यों करौ हो ॥५॥

जानामि मंदभाग्योऽहं, यदर्थं गोकुलेश्वरः ।
भक्तक्लेशा सहिष्णुत्व-स्वभावं कुरुतेऽन्यथा ॥६॥

हे गोकुल के स्वामी ! मैं अपने कूँ मन्दभागी जानूँ हूँ। कारण पहले आप भक्तन के क्लेश नहीं सहते हते। अब सहवे लगे। हमारे लिए अपनों स्वभाव विपरीत कियो। यासों हमारे मन्दभाग्य ही कारण हैं ॥६॥

आशातृणावलंबेन त्वद्वियोगाधिवारिधिम् ।
अनुग्रहगरिष्ठोऽतितरामिह तराम्यहम् ॥७॥

हे नाथ ! फिर हमकूँ आपकी प्राप्ति होयगी। इस आशारूपी तृण को अवलम्बन करकें, आपके अनुग्रह के बल से विप्रयोगरूपी समुद्र तरेंगे ॥७॥

अम्बुदस्य स्वभावोऽयं समये वारि मुञ्चति ।
तथापि चातकः खिन्नो रटत्येव न संशयः ॥८॥

मेघ को तो यह स्वभाव ही है, कि वह समय आइवे पर ही जल बरसावे है। फिर भी खिन्न चातक अपनी पिउ पिउ रटना कियौ ही करै है। हा नाथ ! वैसें ही अपने समय पर ही आप मिलोगे, परन्तु हमारी रटना बन्द नहीं होय है ॥८॥

यद्यप्यहमपराधी तथापि तव चरणसेवकोऽस्म्येव ।
एवं सत्येवं मयि करणं नैवोचितं नाथ ॥९॥

हे नाथ ! यद्यपि हम अपराधी हैं। फिर भी आपके चरण-

सेवक हैं। ऐसौ होयवे सूँ हमारे प्रति ऐसौ करनों उचित नहीं हैं ॥९॥

कालकर्माधीनतां यत्करोषि मयि सुन्दर।
तदप्यनुचितं यस्मात्त्वदीयोऽस्म्युररीकृतः ॥१०॥

हे सुन्दर ! आप मोकूँ काल और कर्म के आधीन करौ हो, सो उचित नांहि है। मैं आपकी हूँ, मोकूँ अंगीकार करो ॥१०॥

स्वतंत्रत्वेन मर्यादां मनुषे नैव चेत्प्रभो।
श्रीगोकुल प्रभुरसि तेनैवं दीनतां ब्रुवे ॥११॥

हे प्रभू ! आप स्वतन्त्र हो, यासूँ मर्यादा कूँ नहीं मानों हो। श्री गोकुल के पति हो, यासूं दीनता करत हूँ ॥११॥

सर्वसाधनशून्योऽहं सर्वसामर्थ्यवान्भवान्।
श्रीगोकुल प्राणनाथ न त्याज्योऽहं कदापि वै ॥१२॥

हे नाथ ! हम सर्वसाधन शून्य है और आप सर्वसामर्थ्ययुक्त हो, यासूँ हे गोकुल के प्राणनाथ ! हमारो कभी त्याग मत करो ॥१२॥

यत्करिष्यसि तन्नाथ, स्वतः एव करिष्यसि।
अतो मुहुः किं वदामि श्रीगोपीवल्लभ ॥१३॥

हे नाथ ! आप जो करोगे, सो स्वतः करोगे। तासूँ हे श्रीगोपीजन वल्लभ हम बारम्बार कहा कहें ॥१३॥

एकोऽपि रेणुर्व्रजभूषणाढ्याः, पातुं क्षमः सर्वत एव सर्वम्।
अशेषतत्पादसरोजरेणु सनाथ-सर्वस्य कुतोऽस्ति मे भीः ॥१४॥

हे नाथ ! श्री गोपीजन की चरण की एक रेणु सर्वप्रकार सूँ सबकूँ पावन करवे कूँ समर्थ है। तब तो उनके सम्पूर्ण रेणु हमारे

नाथ है, तब हमको कहाँ से भय है। अर्थात् श्री गोपीजन हमारे माथे विराज रहे हैं ॥१४॥

घुणकीटवदेव योतरंतश्चरति प्राणभृतामशेषसारम्।
अपगच्छति नाप्युपायलक्षैर्व्रजनाथ प्रणयः स किं सुखाय ॥१५॥

हे व्रजनाथ ! सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में घुटकीट की तरह सूँ रहवे बारौ और सम्पूर्ण धैर्य रूपी सार कौ हरण करवे वारो, तथा लाखों उपाय करवे पर भी नहीं जाइवे वारौ प्रेम कहा सुख के लिए होय है। अर्थात् नही ॥१५॥

त्वन्नामोच्चारणेऽप्यस्ति न जीवेष्वधिकारिता।
अलौकिकत्वात्वन्नाम्नस्त्वद्वाचोऽलौकिकत्वतः ॥१६॥

हे नाथ ! जीवों में आपकौ नाम उच्चारण करवे को भी सामर्थ्य नहीं हैं। कारण आपको नाम अलौकिक है और जीव की वाणी लौकिक है ॥१६॥

एवं सत्यपि जानामि त्वन्नामादिप्रभाववित्।
उद्यदेव स्वयोग्यां तां कुर्वदेव हि राजते ॥१७॥

हे नाथ ! ऐसौ होइवे पर भी आपके नाम के प्रभाव को जानवे वारी जो मैं हूँ, सो ऐसौ जानूँ हूँ कि जीव जब आपके नाम लैवे को विचार करै है, सो आपके नाम वा जीव की वाणी को अपने लैवे योग्य सम्पादन करके विराजत होय है ॥१७॥

त्वदंगीकृतयो जीवेष्वधिकारा यतः प्रभो।
अतस्ते न विचारार्हाः कृपां कुरु कृपानिधे ॥१८॥

हे प्रभु ! जीवों में आपकी अंगीकृतरूपी अधिकार है, याही सों विचार करवे योग्य नहीं है। हे कृपानिधि ! आपही कृपा

करौ ॥१८॥

साधिता भवतुसाधितार्थता-बाधितार्थ विहिताधिकारिता।
क्वापि कापि गतिरुत्सुकास्म्यहं-राधिकाचरणदासिका परम् ॥१९॥

हे नाथ ! होयवे वारौ जो अर्थ है, सो सिद्ध होय, जो विहिता अधिकार होयवे सूँ बाधक रूप होय एवं कहूँ पे कोहू गति होय, तोहू मैं श्री राधिकाजी के चरण की परम दासी होयवे कूँ परम उत्सुक हूँ ॥१९॥

मदीयोऽयमिति ज्ञात्वा, न कस्मै त्वं प्रसीदसि।
यादृशस्तादृशो वाहं तव चेत्किं विलम्बसे ॥२०॥

हे नाथ ! यह हमारौ है, ऐसौ जानकें किसके ऊपर आप प्रसन्न नहीं होत हो ? अर्थात् अपनौ जानों हो, उन सबन के ऊपर आप अपनो नाम जान के प्रसन्न होत हो, तो जैसे तैसे हम जो आपकी दासी हैं, सो क्यों विलम्ब करो हो ॥२०॥

आचार्यचरणौरूक्तं दैन्यं त्वत्तोषसाधनम्।
स्वल्पं बहुतरं वापि तदस्तीति प्रसीद मे ॥२१॥

हे नाथ ! श्री आचार्यचरण आज्ञा किये हैं, कि आपकी प्रसन्नता कौ कारण एक दैन्य है। हे नाथ ! वो दैन्य चाहें थोड़ौ या अधिक कुछ तो हमारे में है ही है, यासूँ आप कृपा करो ॥२१॥

प्रभुस्त्वमेव मे नाथ यत्करोषि वरं हि तत्।
तथाप्यधीरतामेव मानसं मेऽवलम्बते ॥२२॥

हे नाथ ! हमारे प्रभु आप ही हो, जो करौगे सो आछो ही अर्थात् धैर्य रहित होय जाय है ॥२२॥

यदि प्रसन्न एवासि त्वदीयोऽहं न चान्यथा।

न चेदहं तथैवास्मि स्मर स्वानुग्रहं मयि ॥२३॥

हे नाथ ! आप प्रसन्न हौ तो भी हम आपके ही हैं, अन्य के नहीं हैं, यासूँ हमारे में अनुग्रह कौ ही स्मरण करो ॥२३॥

यादृशी मे कृतिर्नाथ, तस्याः फलमिदं कियत् ।
यादृशस्त्वं प्रभु किन्तु तादृगेव विधीयताम् ॥२४॥

हे नाथ ! जैसी हमारी कृति है, वाको फलरूप दण्ड कितनों है, अर्थात् बहुत कम है और अधिक दण्ड होनों चाहिए, किन्तु जैसे आप प्रभु हो वैसो ही अपने स्वरूप कूँ विचार करकें करो ॥२४॥

अपि मे सापराधस्य शिक्षितस्याप्यजानतः ।
हा नाथ पालनीयस्य किमुपेक्षोचिता तव ॥२५॥

हे नाथ ! हम जो अपराधी हैं सो आपके शिक्षारूपी दण्ड वाकूँ नहीं जान रहे हैं, तो भी आपसे ही पालन करवे योग्य है। कारण कि हमारे आप ही हौ । यासूँ हे नाथ ! हमारी उपेक्षा करनी आपको क्या उचित है, अर्थात् नहीं ।

॥ श्री गुसांईजी विरचित प्रथम विज्ञप्तिः समाप्तम् ॥

* * *

॥ द्वितीय-विज्ञप्ति ॥

यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा, त्वमेव शरणं मम ।
मारणे वारणे वापि, दासीनां नः प्रभुर्गतिः ॥१॥

हे नाथ ! यदि प्रसन्न हौ अथवा रुष्ट हौ, परन्तु हमारे तो आप ही रक्षक हौ । जैसे घर की जो दासी वाके मारवे अथवा निवारण करवे में घर का जो पति है, वही गति है अथवा दूसरी गति नहीं हैं ॥१॥

त्वद्वियोगे य आद्यो, मच्छ्वासो निरगमद्बहिः ।
तेनैव सह चेत्प्राणा, न ययुस्तर्हि किं ब्रुवे ॥२॥

हे नाथ ! आपके वियोग में जो प्रथम आह के अर्द्धश्वांस बाहर निकले, तो वाके साथ में हमारे पतित प्राण नहीं चले गये सो या कपट कूँ हम कहा करें ॥२॥

निरपत्रपतां चान्यां, किं ब्रुवे योऽहमीदृशः ।
संगमाशां करोम्येवं, विचाराद्यनपायिनीम् ॥३॥

हे नाथ ! ऐसे भी कपटी होकर के फिर भी विचार आदिन सो भी दुर्घट जो आपके संग की आशा हम कर रही हैं, सो इससे बढ़कर हम अपनी निर्लज्जता कहा कहें ॥३॥

एवं सति त्वदीयस्य, त्वमेव शरणं मम ।
गोकुलेश किमप्यस्तु, त्वं मा मा त्यज किं परैः ॥४॥

हे नाथ ! ऐसे होने पर भी आपकी जो मैं हूँ, सो मेरे आप ही शरण हौ । सो हे गोकुलेश ! चाहे कुछ भी हो पर हमकूँ आप त्याज्य मत करौ ॥४॥

त्वाद्वियुक्तस्य जीवस्य, नित्यतामास्तु कस्यचित् ।
किं तु तत्लक्षण एवास्य, नाश एव व्रजेश्वर ॥५॥

हे व्रजेश्वर ! आपसे अलग भया जो जीव है उसकी नित्यता (जीता रहे) कभी न हो, अर्थात् आपके वियोग के ही क्षण में वाकौ नाश होय जाय है ॥५॥

तोषसाधनराहित्यं, यद्यप्यस्ति मयि प्रभो ।
तथापि सहजैश्वर्यं, त्वय्यस्तीत्यहमक्लमः ॥६॥

हे प्रभु ! यद्यपि करवे को आपकी प्रसन्नता कौ साधन हमारे

कुछ भी नहीं है। तथापि आप में सहज ऐश्वर्य जो दीनन कौ पालन करवे रूप विद्यमान है, तासूँ ही हम प्रसन्न चित्त हैं ॥६॥

यद्यपि त्वत्कृपायोग्यं, पात्रं नास्ति तथापि तु।
त्वमर्हसि कृपां कर्तुं, पितरं वीक्ष्य मे प्रभो ॥७॥

हे प्रभो ! यद्यपि करके आपकी कृपा योग्य हम नहीं हैं तथापि हमारे पितृचरण श्री आचार्य चरण कूँ देखकर हमारे ऊपर कृपा करवे योग्य हैं ॥७॥

महत्यल्पेऽथवार्थे या पराश्रयकृतिर्मम।
निसर्गदोषात्तन्नाशोऽपीह, कार्यस्त्वयैव हि ॥८॥

हे नाथ ! स्वभाव दोष सों ही थोड़े अर्थ के ताईं अथवा महान् अर्थ के ताईं दूसरे कौ आश्रय रूप जो कृति हमसे होय है, सो कृपा करके याकी निवृत्ति भी आपही सूँ होयगी ॥८॥

सर्वज्ञे त्वय्यज्ञतरः किं वच्मि व्रजपालक।
सर्वथाहं त्वदीयोऽस्मि, सान्वयः सपरिग्रहः ॥९॥

हे व्रजपाल ! सर्वज्ञ जो आप हो, सो आपके प्रति अत्यन्त अल्पज्ञ हम कहा कहें। परन्तु हे नाथ ! निश्चय करके सब कुटुम्ब सब वस्तु सहित हम आपके ही हैं। हमको इतनों ही कहनों है कि हम आपके ही हैं ॥९॥

सर्वथा स्वीयतां राधा-प्रिय ज्ञात्वा सदा मयि।
यत्करिष्यसि तत्सर्वं साध्वेवेति मतिर्मम ॥१०॥

हे श्री राधिकाजी के प्रिय ! निश्चय करके हमको आप अपनों समझ करकें, हमारे प्रति जो जो करोगे आछो ही है। ऐसी हमारी मति है ॥१०॥

कस्याग्रे कथयाम्याली मनोदुःखस्य संततिम्।
व्रजाधीश वियोगाब्धि-मग्नः कोऽपि न दृश्यते ॥११॥

हे सखि ! हमारे मन के दुःख को जो विस्तार है सो किसके सामने कहें। कारण कि व्रजाधीश के वियोग रूपी समुद्र में कोई मग्न नहीं दीखै है ॥११॥

यद्दैन्यं तोषहेतुस्ते, आचार्यैः प्रकटीकृतम्।
विना साधनसंपत्तिं, तेन मेऽस्ति स्थिरं मनः ॥१२॥

हे नाथ ! आपकी प्रसन्नता कौ कारणभूत जो दैन्य श्री आचार्य चरण ने प्रकट कियौ है सो साधन सम्पत्ति के अभाव होयवे सूँ वो दैन्य हमारे में है। यासूँ हमारौ मन स्थिर है अर्थात् अवश्य कृपा करौगे ॥१२॥

त्वद्दर्शनादृते नूनं, दिनानीमानि हृत्पते।
वृथा यांति त्वदीयस्य, नाथ त्वं दर्शयान्तिकम् ॥१३॥

हे हृदय के पति ! आपके दर्शन बिना ये सब दिवस निश्चय करके हमारे वृथा जा रहे हैं। वासूँ हे नाथ ! मैं जो आपकी हूँ, सो अपनी समीपता हमकूँ शीघ्र दर्शावो ॥१३॥

मयि यद्यपि नैवास्ति, त्वत्प्रसादनकारणम्।
तथापि स्वीकृतं दैन्यं, मत्वा कार्या कृपानिशम् ॥१४॥

हे नाथ ! यद्यपि करके आपकी प्रसन्नता को कारण हमारे में नहीं है, तथापि स्वीकृत किये हुए जो दैन्य, आपको कृपा के कारणभूतसो हमारे में विद्यमान है, यासूँ अहर्निश कृपा करौ ॥१४॥

त्वद्विप्रयोगदहनज्वरितासवो मे।
यत्संस्थिताः, कथमपीदमतीव चित्रम्॥

भो जीवितेश मम यान्ति कथं दिनानि।
शून्यानि ते, स्मितमुखाब्जविलोकनेन ॥१५॥

हे नाथ ! आपके विप्रयोग रूपी ज्वाला सों ज्वलित जो हमारे प्राण हैं, सो किस कारण कौ अवलम्बन करके स्थिर रहे हैं। मालूम नहीं पड़े है, सो अत्यन्त आश्चर्य है ॥१५॥

अपि जीवितनाथ मन्मनो, लुलितं त्वद्वदनं समीक्षितुम्।
व्यथते सततं समुत्सुकं, नय मां त्वपदपंकिजांतिकम् ॥१६॥

हे जीवन के स्वामी ! मन्द मुस्क्यान से युक्त मुखारविन्द के दर्शन के बिना ये हमारे शून्य दिवस कैसे जाय रहे हैं। हे जीवन के नाथ ! आपके मुखारविन्द के दर्शन करवे के तांई हमारौ मन घबड़ाय रह्यौ है और निरन्तर उत्सुकता करके शीघ्र अपने चरणारविन्द के समीप ले चलौ ॥१६॥

ईदृशः कोऽपराधोऽस्ति, हृदयेश न वेद्म्यहम्।
येनांतराय एतावान् श्रीमुखालोकने मम ॥१७॥

हे हृदय के स्वामी ! ऐसौ कौनसो अपराध है, जाकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ कि जा करके श्री मुखारविन्द के अवलोकन में हमारी इतनों अन्तराय है गयौ ॥१७॥

सर्वात्मनादुरापत्वं, ज्ञात्वाप्याशां करोमि यत्।
भ्रांतोऽस्म्यहं न वेतीश, न जाने करवाणि किम् ॥१८॥

हे नाथ ! सर्व प्रकार सों आप दुर्लभ हौ, ऐसा जान करके भी फिर आपकी प्राप्ति की आशा मैं करूँ हूँ। यासूँ भ्रान्त हूँ अथवा नहीं, यह नहीं जानूँ हूँ। सो हे नाथ ! अब मैं कहा करूँ ॥१८॥

श्रुतिर्यत्प्राह गोपीश, साधनप्राप्यतां त्वयि।

तन्मे न खेदहेतुर्यत्साधनं नास्ति मेऽण्वपि ॥१९॥

हे गोपीजन के स्वामी ! श्रुतियाँ साधन सूँ (अप्राप्य) आपकी प्राप्ति नहीं बतावें हैं। यासूँ हमको खेद नहीं होय है। कारण कि हमारे में अणुमात्र भी साधन नहीं है। यासूँ हमें आपकी प्राप्ति अवश्य होयगी ॥१९॥

त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं, त्वदीयत्वं यदस्ति मे।
तदेव फलमित्यात्म-शास्त्रतः प्रमिनोम्यहम् ॥२०॥

हे नाथ ! मैं जो आपकी हूँ आपकी हूँ, आपकी हूँ। हमको यही फल है। याकूँ आत्मा के अनुभव रूप शास्त्र सों ही प्रमाणित है ॥२०॥

तथापि मन्नेत्रवपुः-प्रभृतीनां व्रजाधिप।
साक्षात्वय्युपभोगं मे, मनः कामयतेतराम् ॥२१॥

हे व्रज के अधिप ! तथापि हमारे नेत्र, शरीर इत्यादि सर्वाङ्ग सूँ आपके उपभोग करवे की अत्यन्त कामना करे हैं ॥२१॥

त्वदंतरंगभक्तांघ्रि-पद्मदास्यं व्रजेश्वरं।
त्वदीयतायाः फलमित्यहं मन्ये न चेतरत् ॥२२॥

हे व्रजेश्वर ! आपके अन्तरंग जो भक्त हैं, उनके चरणारविन्द कौ दास होनों, आपके जन होयवे कौ ये ही फल है, ऐसौ मैं जानूँ हूँ, अन्य नहीं ॥२२॥

यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम।
तत एवास्ति नैश्चित्यमैहिके पारलौकिके ॥२३॥

हमारे तातचरण श्रीआचार्य चरण ने आज्ञा करी है कि हमारे रक्षक श्रीकृष्ण हैं। याही सूँ हमको या लोक में तथा परलोक में

निश्चिंतन्तता है ॥२३॥

इति वस्तुस्थितौ सत्यामपि त्वद्वदनांबुजम् ।
द्रष्टं कामयते चेतः, सस्मितेक्षणमोहनम् ॥२४॥

ऐसी वस्तुस्थिति होने पर भी मन्दमुस्कान से युक्त मनोहर जो आपकौ मुखकमल है, वाकूँ देखवेकूँ चित्त अत्यन्त कामना करै है ॥२४॥

नान्यास्ति कामना देहस्थितिरेतादृशी मम ।
नोचिता तावकीनस्य, विज्ञप्तिरियमेव मे ॥२५॥

हे नाथ ! जैसें आपके मुखकमल के दर्शन की कामना हमारे मन में है, ऐसी कोई भी कामना नहीं है । हे नाथ ! आपके हो करके वाको ऐसी स्थिति होनी उचित नहीं, हमारी यही प्रार्थना है ॥२५॥

॥ श्रीगुसांईजी विरचित द्वितीय विज्ञप्ति समाप्त ॥

* * *

॥ तृतीय-विज्ञप्ति ॥

यद्दैन्यं त्वत्कृपाहेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि ।
तां कृपां कुरु राधेश, यया ते दैन्यमाप्नुयाम् ॥१॥

हे राधेश ! जो आपके कृपा के हेतुभूत दैन्य है, सो हमारे में अणुमात्र भी नहीं है, सो ऐसी कृपा करो, कि जिसमें वो दैन्य हमारे में प्राप्त हो ॥१॥

सर्वेषां जीवनं लोके, दृष्टं सर्वार्थसाधकम् ।
ग्लान्येकफलकं जातमधुना मम जीवितम् ॥२॥

हे नाथ ! सम्पूर्ण प्राणीन के जीवन या जगत् में सर्वार्थ दीखवे

में आवै है या समय में हमारौ जीवन केवल ग्लानियुक्त फलजनक है ।।२।।

कर्त्तुं पुनर्यथाकर्तुमन्यथा कर्तुमीश्वरे ।
सामर्थ्य यन्मया दृष्टं, त्वय्येवातो न संशयः ।।३।।

हे नाथ ! कर्तुं अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं यह सामर्थ्य ईश्वर जो आप हैं । सो आप में ही हमने देख्यो है, यामें कोई भी संशय नहीं है ।।३।।

तं न पश्यामि यस्याग्रे, वार्ता स्वस्य मनोगताम् ।
उक्त्वा तदुत्तरं लब्ध्वा, मनो विश्रामयेक्षणम् ।।४।।

हे सखी ! ऐसे प्राणी को हम नहीं देखें हैं । जाके आगे मन की बात कहकें और वाकौ उत्तर पायकें क्षणमात्र भी मन में विश्राम करे ।।४।।

अतीव नीचा मत्प्राणा, मूर्खा अपि गतत्रपाः ।
स्वस्थित्ययोग्यकालेऽपि, यतस्तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ।।५।।

हमारे प्राण अत्यन्त नीच, मूर्ख तथा निर्लज्ज हैं । कारण कि अपनी स्थिति के अयोग्य समय में भी ठहर रहे हैं । कारण कि प्राणनाथ के वियोग में इनको निकल जानों हतो, सो नहीं निकले हैं ।।५।।

शास्त्रं नियामकं तावद्यावत्पूर्णकृपा नु ते ।
कृपया ते न पूर्णस्य, नैव कोऽपि नियामकः ।।६।।

हे नाथ ! शास्त्र तभी तक नियामक है, जब ताई आपकी पूर्ण कृपा नहीं है और आपकी कृपा से जो पूर्ण हो गए हैं, उनको कुछ भी नियामक नहीं है ।।६।।

सुभगा एव जानन्ति प्रियसौभाग्यजं सुखम्।
तदधीनायास्तदीयेति, प्रसिद्धिः शरणं सखि ॥७॥

हे सखी ! जो सुभगा स्त्री है, अपने प्रियतम के सौभाग्यरूपी सुख को ही जानें है और सौभाग्यहीन जो है, सो केवल अपने पति के नाम से प्रसिद्ध है कि अमुक की स्त्री है ॥७॥

प्रियसंगमराहित्याद्, व्यर्था सर्वे मनोरथाः।
निरपत्रपतासिद्ध्यै, जीवामि सखि साम्प्रतम् ॥८॥

हे सखी ! प्रियतम के संग से रहित होयवे सूँ हमारे सब मनोरथ व्यर्थ हैं। इस प्रकार में केवल निर्लज्जता की सिद्धि के लिए ही हम जी रही हैं ॥८॥

न लब्धस्तादृशः कोऽपि, यस्याग्रे स्वमनोगताम्।
वार्तामुक्त्वा स्वमात्मानं, क्षणं विश्रामयाम्यहम् ॥९॥

ऐसौ कोई प्राप्त नहीं होय है कि जाके आगे मनोगत वार्ता कहकें क्षणमात्र भी अपनी आत्मा को विश्रामित करें ॥९॥

अद्य श्वो वा परश्वो वा, कदाचित्कृपयिष्यति।
नाथ इत्याशया सर्वं, गतं जन्म करोमि किम् ॥१०॥

हे नाथ ! आज अथवा कल अथवा परसों कभी भी कृपा करौगे। इस आशा से सगरे जन्म बीत गये। हाय ! अब हम कहा करें ॥१०॥

तथापि त्वत्कृपाकांक्षां, मनो मे निरपत्रपम्।
कं वा हेतुं सुनिश्चित्य, करोतीति न वेद्म्यहम् ॥११॥

तथपि यह मेरो निर्लज्ज जो मन है, सो कौन हेतु कौ निश्चय करकें आपकी कृपा की आकांक्षा करे हैं। याकूँ मैं नहीं जानू हूँ ॥११॥

स्वभावतः सदा मेघः, सर्वेषां जीवनप्रदः।
जाने तस्यैव दौर्भाग्यं, सोऽपि यत्तमुपेक्षते ॥१२॥

त्वदीयत्वमपि ज्ञात्वा, मयि कालादयः प्रभो।
प्रभवन्ति ततो मन्ये, त्वत्कृपाशून्यतामपि ॥१३॥

हे नाथ ! कालादिक सब मुझकों आपकी जानकें भी जो अपनों प्रभाव दिखावे है। यासों आपकी कृपा से शून्यतामय अपने कूँ मानूँ हूँ ॥१३॥

विज्ञप्तौ वाऽपराधे वा, पाखण्डे वा मदुक्तयः।
पर्यवस्यति कुत्रेति, न जानेऽहं विमूढधीः ॥१४॥

हे नाथ ! ये हमारौ कथन प्रार्थना में अथवा अपराध में अथवा पाखंड में कहाँ पर अवसान होयगौ। याकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ। बुद्धि मूढ़ हो गई है ॥१४॥

राज्यायोग्ये तदाकांक्षा, दंडावाध्यै यथा भवेत्।
त्वत्सेवायामहं तादृक् तदवापदशामिमाम् ॥१५॥

राज्य के अयोग्य जो होय है और वह राज्य की आकांक्षा करै है, सो जैसे दण्ड देयवे कौ पात्र होय है। ऐसे ही हे नाथ ! आपकी सेवा में अयोग्य जो मैं हूँ सो इस दशा को प्राप्त भई हूँ ॥१५॥

स्वीयं कृतागसं चेत्त्वं, दूरस्थं कुरुषे यदि।
इतः परोऽधिको दण्डस्त्वदीयस्य न विद्यते ॥१६॥

हे नाथ ! अपराधी अपने जनन कूँ आप यदि दूर करौ हो, तौ यासे अधिक वाके लिए और दण्ड नहीं है ॥१६॥

वियोगो बाधते तावद्यावद्हृद्येव ते स्थितिः।

यदा बहिस्तदा नेति, विचित्रेयं स्थितिस्तवः ॥१७॥

हे नाथ ! जहाँ ताईं आप हृदय में विराजो हो, वैसे ही वियोग भी बाधा करै है और जब हृदय से बाहर पधार जाऔ हो, तब वियोग भी बाधा नहीं करै है । ये आपकी विचित्र स्थिति है ॥१७॥

भूर्जत्वगिव मद्दोषा, निस्सरन्त्येव सर्वतः ।
तथैवानन्यगतिके, त्वत्क्षमेति न मे भयम् ॥१८॥

हे नाथ ! भोजपत्र के पत्ता की तरह से चारों ओर से हमारे दोष निकलते ही जाँय हैं । तथापि अनन्यगति जो हम हैं, जाकौ दूसरो स्थान नहीं है, सो आप ही रक्षक हो, यासूँ भय नहीं है ॥१८॥

बलिष्ठा अपि मद्दोषास्त्वत् क्षमाग्रेऽतिदुर्बलाः ।
तस्या ईश्वरधर्मत्वाद्-दोषाणां जीवधर्मतः ॥१९॥

हे नाथ ! बलिष्ठ भी हमारे दोष हैं, तौ भी आपकी कृपा के आगे अति दुर्लभ हैं । कारण कि आपकी कृपा ईश्वर को धर्म है और दोष जीव कौ धर्म है ॥१९॥

मत्प्राणानां स्वतो लज्जा, नैवास्ति परतोऽपि च ।
प्राप्याप्यवस्थां नो यान्ति, इहामुत्र च गर्हिताम् ॥२०॥

हे नाथ ! हमारे प्राणनकूँ स्वतः भी लज्जा नहीं है और दूसरे सूँ भी लज्जा नहीं है । कारण कि या लोक और परलोक में निन्दित अवस्था कूँ प्राप्त होय करकें भी नहीं जाँय हैं ॥२०॥

त्वद्दर्शनविहीनस्य, त्वदीयन्तस्य तु जीवितम् ।
व्यर्थमेव यथा नाथ, दुर्भगायाः नवं वयः ॥२१॥

हे नाथ ! आपके दर्शन बिना जो आपके जन कौ जीवन है, सौ विधवा की नवीन अस्था के ताईं व्यर्थ है ॥२१॥

गतः स कालो यत्रासीत्सु, दुर्लभकृपा मयि ।
इदानीमीदृशः कालो यत्त्वं दृग्गोचरोऽपि न ॥२२॥

हे नाथ ! जिन काल में आपकी दुर्लभ कृपा आपकी हती वो काल अब चल्यौ गयौ, या समय में तो ऐसौ काल आयो है कि आप दृष्टिगोचर भी नहीं हौ ॥२२॥

त्वदीयानां सुखं दुःखं, न लोकसदृशं भवेत् ।
त्वत्सेवायां सुखं सर्वं, नोचेत्तस्य विपर्ययः ॥२३॥

हे नाथ ! आपके जन को जो दुःख-सुख है, सो लोक सदृश नवीं होय है । कारण कि आपकी सेवा में ही सुख और सेवा विना सम्पूर्ण दुःख है ॥२३॥

मत्वा स्वकीयतां नाथ, रोषेण कृपया तव ।
ताड़नं लालनं चैव, परमानन्ददं मम ॥२४॥

हे नाथ ! अपनों मान करकें शेष सों अथवा कृपा सों लालन करौ, चाहें ताड़न करौ वो हमकूँ परमानन्द दैवे वारौ होयगौ ॥२४॥

त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य त्वदीयस्यापि नित्यता ।
संगं विना न चैवास्तु विज्ञापनमिदं मम ॥२५॥

हे नाथ ! आपके जन होय करकें जो आपसे वियुक्त हैं, सो आपके संगम के बिना उनके जीवन की नित्यता न हो, नाश हो जाय, यही हमारी प्रार्थना है ॥२५॥

॥ श्री गुसांईजी विरचित तृतीय विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

॥ चतुर्थ-विज्ञप्ति ॥

यादृग्भाग्यं पुरा मेऽभूत्तन्महत्वं न वेदम्यहम्।
येनासीत्वत्कृपा पूर्णा, सुदुर्लभतरा मयि ॥१॥

हे नाथ ! पहिले हमारो जैसो भाग्य हत्यौ, बाकी महिमा को मैं नहीं जानूँ हूँ, कि जा भाग्य से हमारे में सुदुर्लभ और पूर्ण कृपा आपकी भई हती ॥१॥

मा जीवता त्वदीयो यस्तव सेवा विवर्जितः।
सत्या विज्ञप्तिरेषा मे, नाथ त्वं मनुषे यदि ॥२॥

हे नाथ ! आपके जन हो करकें आपकी सेवा से रहित वाकौ जीवन मत होओ। हमारी सत्य विज्ञप्ति यही है, यदि आप मानों ॥२॥

स्वस्थित्ययोग्यं मत्वापि, मच्छरीरं ममासवः।
यन्न त्यजन्ति तेनाहं, मन्येताक्निरपत्रपान् ॥३॥

हे नाथ ! हमारे प्राण हमारे शरीर को अपनी स्थिति के अयोग्य भी मान करकें जो त्याज्य नहीं करें हैं, यासूँ हम प्राणनकूँ निर्ल्लजन मानें हैं ॥३॥

त्वत्कृपातः पुरा नाथ, मया कालादयः प्रभो।
तुच्छीकृताः साम्प्रतं मां, बाधन्ते त्वत्कृपां विना ॥४॥

हे नाथ ! आपकी कृपा से पहले हमने कालादिकन कूँ तुच्छ कर दियो, सो हे प्रभो ! या समय में आपकी कृपा को अभाव जानके सब बाधा करें हैं ॥४॥

त्वत्सेवायामयोग्यस्य, त्वदीयस्य मम प्रभो।
इत्येव हि पराकाष्ठा, अभाग्यस्येति मे मतिः ॥५॥

हे प्रभो ! मैं आपकी हो करकें आपकी सेवा के अयोग्य जो हूँ, सो मेरे अभाग्य की यही चरम सीमा है, ऐसी हमारी बुद्धि है। (ऐसो मैं मानूँ हूँ) ॥५॥

इत्थं जीवनमस्तुं, क्षणमपि भवदंघ्रिविप्रयोगे तु।
मरणं भवतादेवं, भावे शरणं त्वमेवाशु ॥६॥

हे नाथ ! इस प्रकार से आपकी सेवा-संबंध से जीवन हो, सो तो ठीक है, नहीं तो क्षणमात्र भी आपके चरणारविन्द के वियोग में मरण होय जाय सो ही उचित है। ऐसो होयवे में भी आपही की शरण हो (अर्थात् रक्षक हो ॥६॥

गत्यानपि बहून्यहान्यहह यान्ति यास्यन्त्यपि।
त्रिभंगललिताकृति-प्रियतमाङ्गसङ्गं विना॥
न कोऽपि मम स क्षणो, भवति यत्र भाग्योदयः।
कदा नु निजजीवनं, दृशि निवेशयिष्याम्यहम् ॥७॥

हे प्रियतम् ! त्रिभंग ललित जो आपकी आकृति है, सो आपके अंग संग के बिना बहुत दिन बीत गये और बीते जाँय हैं, और बीतेंगे। कोई भी हमको वो क्षण नहीं है, कि जा क्षण में हमारे भाग्य उदय हों। कब अपने जीवन प्राणनाथ को अपनी दृष्टि में प्रवेश करावेंगी ॥७॥

इयदवधि कदापि गोकुलेशः, स्वजनकृते समाकारिनो विलंबम्।
परमिह सुतरामुपेक्षितोऽहं-कथमिति खिद्यति मानसं मुहुर्मे ॥८॥

आज तक वो गोकुलेश ! कभी भी अपने जनन के ऊपर कृपा करबे में विलम्ब नहीं किये। केवल हमारी ही उपेक्षा अब क्यों करें हैं। सो हमारी मन क्षण-क्षण में खेद पावै हैं ॥८॥

बहुधैवममापराधवृन्दस्तदपि त्वं न विमुंचसि स्वकीयान्।
अतएव न क्वापि कापि चिंता, भवति प्राणपते ममेदृशस्य ॥९॥

हे नाथ ! हमारे अपराध कौ समुदाय बहुत है, तथापि आप अपने जनन को त्याज्य नहीं करौ हो, याही सों हे प्राणपते ! ऐसौ जो मैं हूँ, सो कोई बात की चिन्ता नहीं करूँ हूँ ॥९॥

हृदयं विरहं तवेच्छतीदं, न दृशो मे व्रजनाथ किं करोमि।
न हि कोऽपि परस्परं विरोधे-त्यजतिस्वार्थमतिप्रबोधितोऽपि ॥१०॥

हे नाथ ! हमारौ जो हृदय है, सो आपके बिरह की इच्छा करे है और हे व्रजनाथ ! यह दृष्टि आपके दर्शन की इच्छा करै है, सो हम कहा करें। अति ज्ञानी भी परस्पर विरोध में अपनी स्वारथ नहीं छोड़ै हैं ॥१०॥

हा नाथ जीविताधीश, राजीवदललोचनः।
यथोचितं विधेहीति, प्रार्थनं तावकस्य मे ॥११॥

हे नाथ ! हा जीविता के अधीश ! हा कमलदल लोचन ! जैसो उचित समझो, वैसौ करौ। मैं जो आपकौ हूँ, सो हमारी यही प्रार्थना है ॥११॥

अजनि रजनिः प्रादुर्भूतं तमो विजनादिश-
स्त्वमसि चतुरा चाहं संगाभिलाषवती चिरात्।
तदपि तु यदप्राप्तिः प्रेष्ठस्य मे सुविचारितम्-
प्रियसखी परिरंभारंभे विधेरविधेयता ॥१२॥

हे प्रिय सखी ! रात्रि भी आय गई, रात्रि कौ अन्धकार भी प्रकट है गयौ, सब दिशाएं भी मनुष्यों से शून्य है गई (एकान्त होय गई) हैं। सखि ! तुम भी प्रियतम कूँ अच्छी-अच्छी बात

कह करकें पधरायवे में अति चतुर हौ, और हम भी बहुत समय सों प्रियतम के संगम की अभिलाषा कर रही हैं। बहुतकाल सों प्रियतम सों विचार कियौ गयौ, तो भी प्रियतम की प्राप्ति नहीं भई। परिरम्भन के आरम्भ में विधि की ही अवधेयता है ॥१२॥

त्वत्तो नान्यां प्रपश्यामि राधाबाधाविरोधिनी।
तत्त्वं यथैव मत्प्राणो, मिलत्येव तथा कुरु ॥१३॥

हे राधा ! तुमसे अन्य बाधा को नाश करवे वारौ हमैं नहीं दीखे है। यासों जैसे प्राणनाथ हमको मिलें, ऐसौ आप करौ ॥१३॥

त्वदीयमधुसूक्तिभिर्व्रजजनेशसंगाशया।
मनोजशरपीडिताः, कथमपि स्थिता मेऽसवः ॥
अतः परमये यदि, प्रियतमांगसंगो भवेत्।
तदैव मम जीवितं, विरहितादशाहृत्करम् ॥१४॥

हे व्रजजन के स्वामी ! आपके मधुर रस संबंधी वाक्यों से आपके समागम की जो आशा भई है। वाही सूँ काम कौ बाण सो पीड़ित भी हमारे प्राण किसी तरह ठहर रहे हैं ॥१४॥

किं ब्रवाणि सखि प्रेष्ठ-विरहानलदाहिता।
यज्जीवामि तदेवात्र-निरपत्रपतास्पदम् ॥१५॥

हे प्रियतम ! अब याके पश्चात् विरहिता दशा कूँ निवृत्त करवे वारौ जो आपकौ समागम है, सो यदि होयगो तभी होयगो, अन्यथा नहीं। हे सखी ! प्रियतम की विरहाग्नि से जलाई गई मैं कहा करूँ जो मैं जी रही हूँ। यह ही मेरी निर्लज्जता है ॥१५॥

सख्ये तल्लिखनीयं, त्वयातियत्नेन राधिकानाथ।

कृपयिष्यत्यथवा, मन्मनोरथैर्नैवजन्मनिर्वाहः ॥१६॥

हे सखी ! तुम या बात कौ प्रयत्न करकें लिखियों कि राधिकाजी के पति हैं, कहा हमारे ऊपर कृपा करेंगे कि मनोरथ करते-करते हमारौ जीवन बीत जायगौ ॥१६॥

व्रजेश त्वद्वियोगाग्निदाहोह्यप्रिय एव मे ।
त्वत्संगमवियोगे यद्बाधते नान्यथा क्वचित् ॥१७॥

हे व्रजेश ! आपकी वियोगाग्नि कौ जो दाह है, सो अत्यन्त अप्रिय है। आपके संगम के वियोग में ही बाधा करे हैं, अन्यथा कभी भी नहीं करै है ॥१७॥

बलीयसी जीवनाशा, गोपीश विरहेऽस्ति हि ।
साम्प्रतं मे त्वमस्येका, यदार्त्तशरणा सखि ॥१८॥

कैसी बलवान् जीवन की आशा है कि गोपीश के विरह में भी जी रहे हैं। हे सखी ! या समय में हमारी तुम ही एक रक्षक हौ ॥१८॥

त्वद्भावो नाथ सर्वेषां मुक्त्यादिफलकः स्मृतः ।
विरहाधिफलो जातः, स एव व्रजनाथ मे ॥१९॥

हे नाथ ! आपकौ जो भाव है, सो सम्पूर्ण प्राणियों को मुक्ति आदि फलन कूँ देवे वारौ है। सो ही भाव हमकूँ केवल विरह के द्वारा मानसी क्लेश देवे वारौ भयौ है ॥१९॥

त्वत्प्रियापादरेणूणां, संचयो हृदये न चेत् ।
भवद्वियोगदावाग्निस्तदा किं ज्वालयेन्न माम् ॥२०॥

हे नाथ ! आपकी प्रिया के पादरेणु कौ संचय यदि हमनें हृदय में नहीं कियौ है, तब आपके वियोगरूपी दावाग्नि नहीं जलावेगी,

अर्थात् अवश्य जलावेगी ॥२०॥

त्वद्वियोगेऽपि मे प्राणास्तिष्ठेयुरिति नोचितम् ।
परं त्वसंभवं दुःखं, तैर्विना नैव सन्ति ते ॥२१॥

हे नाथ ! आपके वियोग में भी हमारे प्राण ठहर रहे हैं, सो उचित नहीं है, परन्तु उन प्राणन के बिना तो वियोग संबंधी दुःख कौ अनुभव भी तो नहीं होयगौ ॥२१॥

संतोषो जायते प्राणप्रिय त्वल्लेखदर्शनात् ।
सर्वेषां मे तथा जाते, 'हा' कष्टमिति किं वद ॥२२॥

हे प्राणप्रिय ! आपके लेख कौ दर्शन करवे सूँ सबकूँ सन्तोष होय है, ऐसे ही लेख दर्शन सूँ हमकूँ भी सन्तोष होय गयौ नहीं महान् कष्ट है क्या कहें ॥२२॥

मदीयहृद्गतं ज्ञानरत्नं चिंताम्बुधौ सखे ।
पातयित्वा स्वहस्तेन, क्व गतः कंजलोचनः ॥२३॥

हे सखी ! हमारे हृदय में रहवे बारौ ज्ञानरूपी रतन वाकौ हे कमल लोचन अपने हाथ सों चिन्ता के समुद्र में डारकें आप कहाँ चले गये ॥२३॥

त्वद्वियोगाग्निविज्वाला-विदग्धा अपि मेऽसवः ।
तिष्ठेयुरिति नो चित्रं, यतोऽहं निरपत्रपः ॥२४॥

हे नाथ ! आपकी वियोगाग्नि की ज्वाला सूँ जले भये भी हमारे प्राण ठहर रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। कारण मैं निर्लज्ज हूँ ॥२४॥

प्राणेश विरहक्लिष्टाः, प्राणस्तिष्ठंति मे कथम् ।
वियोगाग्निविदग्धानामंतकोऽपि न संस्पृशेत् ॥२५॥

प्राणेश के वियोग सूँ क्लिष्ट भी हमारे प्राण कैसे ठहर रहे हैं, कारण कि वियोगाग्नि से जो जले भये हैं, उनकूँ तो यम अथवा मृत्यु भी स्पर्श नहीं करै है ॥२५॥

॥ श्री गुसांईजी विरचित चतुर्थ विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

* * *

॥ पञ्चम-विज्ञप्ति ॥

असमशरज्वरजर्जरदेहा, विरहाग्निजालसंतप्ता ।
त्वत्प्रणय सर्पदष्टा, कं वा शरणं व्रजामीश ॥१॥

हे ईश ! काम के बाणन की ज्वाला सूँ जर्जर देह वारी तथा विरहाग्नि की ज्वाला सूँ सन्तप्त और आपके प्रेम रूपी सर्प ने डस लियो है, ऐसी जो मैं हूँ, किसके शरण आऊँ ॥१॥

व्रजनाथतवाधरामृतं मे, सकृदास्वादितमिन्दिरादुरापम् ।
अभवन्मरणाय किं न कुर्यादसकृत्पीतमिदं व्रजांगनाभिः ॥२॥

हे व्रजनाथ ! लक्ष्मीजी को भी दुराप (दुःख से प्राप्त) करवे योग्य जो आपकी अधरामृत, सो वाको हमने एक बार ही पान कियो, सो हमकूँ मृत्यु प्रदान करवे वारौ होंतो भयौ, सो उस अधरामृत कूँ व्रजांगनाओं ने निरन्तर पान कियौ, सो उनको कहा नहीं होंतो होयगौ ॥२॥

शुभाशय विनाशय, त्वदरामृतास्वादनोद्-
गतप्रचुरमन्मथ-प्रथितबाणपूगव्यथाम् ।
कदंबनवमंजरी-कुसुममंजुकुंजोदरे
निजांगपरिरंभणामृतरसादि दानेन मे ॥३॥

हे सुन्दर हृदय वारे ! आपके अधरामृत के पान सूँ उत्पन्न भयौ

प्रचुर काम वा काम सूँ चलायौ भयौ जो प्राण समूह वाकी व्यथा कूँ कदम्ब की नूतन मंजरी तथा पुष्प वाकौ मनोहर जो कुंज, वाके मध्य में अपने अंग कौ परिरम्भन आदि अमृत रस के दान सूँ विनाश (निवृत्त) करौ ॥३॥

कथमपि पुनरप्युदारलीला प्रिय परिशीलयखेलनं पुरेव।
अमलकमलगर्भगंधवाहः, प्रसरति मारुत एष मारबंधुः ॥४॥

हे उदरलीला वारे प्रिय ! निर्मल कमल के भीतर की गन्ध कूँ प्राप्त करवायवे वारौ काम कौ बन्धु यह वायु चल रह्यौ है। यासों किसी तरह से पुनः पहले की तरह से हमारे संबंधी लीला करौ ॥४॥

परिरम्भणचुम्बनादिभावा, भवता प्रेष्ठकृता विमोहनं च।
स्मरसुन्दर मोहनं परं, मय्यवशिष्टं न च ते मनोज्ञभावाः ॥५॥

हे प्रियतम ! हे काम कूँ सुन्दर ! आपकौ कियौ गयो परिरम्भन चुम्बन आदि तथा विमोह वामें सूँ केवल एक मोह हौ अवशिष्ट रह्यौ है (बाकी रह्यौ है) अब आपके सम्बन्ध सूँ कामरस सम्बन्धी जो भाव हतौ वो सब लोप होय गयौ है ॥५॥

मदमंथरवारणेन्द्रलीला, यमुनाकूलनिकुंजदेशगा।
व्रजजीवन या त्वया कृता, सा मरणायैव किमीश मेऽधुना ॥६॥

हे व्रजजीवन ! मदमन्थर गति वारौ जो श्रेष्ठ गजराज वो जैसें अपनी हथनीन के साथ लीला करै हैं, तैसी लीला जो श्री यमुनाजी के पुलिन में निकुंज देश में जो आपके हमारे साथ करी सो हे स्वामिन् ! क्या वह लीला या समय में हमारे लिए मृत्यु के लिए ही भई ॥६॥

किमर्थं पायिता मह्यं, निजाधरसुधासवः ।
श्रावितः श्रवणानन्दो, वेणोश्च कलनिःस्वनः ।।७।।

हे नाथ ! आपके अधर सुधा रूपी मदिरा हमकूँ काहे के ताईं पान कराये और श्रवण कौ आनन्द दैवे वारो वंशी कौ मधुर स्वर काहे कूँ सुनाये जो ऐसौ ही करनौ हतो तो ।।७।।

दूरीकृता रुचिर्मे, निजवदनादन्यवस्तुतो भवता ।
तदपि न ददासि गोपीपरिवृढ ते मोहनं कठिनम् ।।८।।

हे गोपीजन के स्वामी ! अपने मुख कमल के अतिरिक्त वस्तु में से हमारी रुचि दूर कर दीनी, तो भी अपने अधरामृत को दान आप नहीं करौ हो, ये आपकौ कठिन मोह है ।।८।।

वितरवीर निजाधरसीधु मे, विरहकुंकुमितस्तनमण्डले ।
हरवियोगरुजं मम वक्षसि स्मरनिवासगृहे विलस प्रभो ।।९।।

हे वीर ! अपने अधरामृत कौ दातृत्व गुण सों ही आप वितरण (वारौ) हमकूँ करो, और वियोग सम्बन्धी व्याधि कूँ हरण करौ और हे प्रभो ! विरह से पीले जो हमारे स्तनमण्डल जामें होय रहे हैं, ऐसी जो काम कौ निवास स्थल जो हमारौ वक्षस्थल है, वामें विलास करौ ।।९।।

विषमो वियोगरोगस्तदज्ञजनता समागमश्चायम् ।
यदिह भवं तं भिषजं, विना मरिष्यामहं सत्यम् ।।१०।।

हे नाथ ! ये वियोग रूपी रोग बड़ौ विषम है जो या व्याधि कूँ नहीं जानें हैं, उन्हीं जनन कौ यहाँ समागम होय रह्यौ है । यासें हे नाथ ! आप यदि वैद्य बनकें नहीं आओगे तो हम निश्चय ही मर जायंगी ।।१०।।

व्रजनाथ वदस्व किं नु कुर्यां क्व नु यामि क्व मनः स्थिरं ममस्यात्।
वदनाम्बुजरुहं विना तवेमाः, ककुभः शून्यतमास्तमालनील॥११॥

हे व्रजनाथ ! हे तमाल की वृक्ष की तरह से नील वर्ण वाले ! कहो अब हम कहा करें और कहाँ जाँय, कहाँ हमारौ मन स्थिर होयगौ । आपके मुखारविन्द के बिना ये सब दिशाएँ हमकूँ शून्य प्रतीत होय रही है ॥११॥

प्रेष्ठ त्वद्वदनांबुजं हृदि समा-गच्छेत्कथंचिन्मम।
प्राणान् स्थापयति स्वभावशिशिर-स्निग्धालकालिश्रितम्॥
नो चेत्तवद्विरहेण दावदहन-ज्वालायितेन द्रुतम्।
जीर्णाः पंचशिलीमुखान्तररुजा, गच्छेयुरेवातुराः॥१२॥

हे प्रियतम ! स्वभाव सों ही ठंडो तथा स्नेही जल सों युक्त आपकौ मुखारविन्द किसी तरह सों हमारे हृदय में प्राप्त भयौ । याही सों हमारे प्राण रह रहे हैं, नहीं तो आपके विरह सों उत्पन्न जो दावाग्नि वाकी ज्वाला सूँ शीघ्र जरजर होकर और कामदेव के बाणों से घायल होकर हमारे प्राण चले ही गये होते ॥१२॥

तांस्त्वन्मधुरालापांस्तां गतिमीक्षां च तांश्च परिरंभान्।
हसितान्यनुस्मरन्ती, जीवामि नहि म्रिये चाहम्॥१३॥

हे नाथ ! पूर्व अनुभूत वो आपके मधुर भाषण तथा वो आपकी मधुर मन्दभरी चाल तथा वह स्नेह भरी निरीक्षण तथा आपसे किये गये परिरम्भन तथा मधुर हास्य इन सबन कौ ही स्मरण करकें हम जी रही हैं, मरती नहीं हैं ॥१३॥

भवदीयं यत्किञ्चित्, स्मरणपथारूढ़मंगमेंगानि।
अन्तश्चूर्णीकुरुते, हन्ति विवेकत्रपाधैर्यम्॥१४॥

हे अंग ! आप सम्बन्धी जो कुछ भी क्रिया विहारादि पूर्वानुभूत स्मरण में आयवे सूँ हमारे अंगन कूँ और अन्तःकरण कूँ चूर करै है, और विवेक धैर्य लज्जा कूँ नाश करै है ॥१४॥

वियोगदुःखजाश्रूणां, निरोधो दुष्करः परः।
प्राकट्ये ह्यज्ञजनता–लज्जेति करवाणि किम्॥१५॥

हे नाथ ! वियोग सम्बन्धी दुःख सों उत्पन्न भयौ जो अश्रु वाकौ रोकनों अत्यन्त दुष्कर है और प्रगट होयवे सूँ वा रहस्य कूँ नहीं जानवे वारी जो जनता है, वासों लज्जा (होय) आवै है, सो हम कहा करें ॥१५॥

त्वद्वदनमुष्टहृदया, विहारमंदस्मितादि हृत्प्राणा।
मग्ना विरहसमुद्रे, जीवामि कथं विना त्वाहम्॥१६॥

आपके मुख सों चुरायौ गयौ हृदय जिसकौ, और विहार तथा मन्द–मुस्कान सों हरण होय गयौ है चित्त जिसकौ तथा विरह समुद्र में निमग्न ऐसी मैं हूँ सो हे नाथ ! आपके बिना कैसे जीवन धारण करें ॥१६॥

प्राणप्रिय त्वदनुराग–समुल्लसद्भ्रू,
मंदस्मितेक्षणविलक्षण–मोहनास्यम्।
द्रक्ष्याम्यहं यदि न हन्त कथं, भविष्याम्यंग
त्वदंगपरिरम्भणमुष्टचित्ता॥१७॥

हे प्राणप्रिय ! हे अंग ! अनुराग सों शोभायमान जो आपकी भौंह तथा मन्दमुस्कान युक्त आपकी निरीक्षण तथा मन मोहिवे बारौ और विलक्षण आपकौ मुख कमल आपके अंग कौ आलिंगन सों चुरायौ गयो चित्त जाकौ ऐसी जो मैं नहीं देखूँगी

तो बड़ी खेद की बात है, कैसे रहूँगी ।।१७।।

अंग त्वदंगसंगेन, विना विरहपीडिता ।
जन्मनिर्वाहयिष्यामि, कथमेतद् व्रजाधिप ।।१८।।

हे अंग ! हे व्रजाधिप ! आपके अंग संग के बिना विरह से पीड़ित होय करके अपने जन्म कौ कैसे निर्वाह करूँगी ।।१८।।

न हीदमुचितं नाथ, त्वदीया त्वयि सत्यपि ।
भवत्यनिशमुद्रिक्ता, त्वद्वियोगर्तिपीडिता ।।१९।।

हे नाथ ! आपके रहते सहते आपकी वियोगार्ति सूँ पीड़ित हो करके आपके जन अहर्निश दुःखी रहें यह उचित नहीं है ।।१९।।

सकृदपि वदनसुधानिधि-मतिदीनायै दुरंत दुःखेन ।
दर्शय मे निजविभ्रम-मोहितगोपांगनानिचयम् ।।२०।।

हे नाथ ! जाकौ अन्तर नहीं होय सके, ऐसे वियोग दुःख सूँ अत्यन्त दीन जो मैं हूँ, वाकौ एक बार भी अपने मुखचन्द्र कौ दर्शन करवाओ । मुखचन्द्र कैसे हैं, कि जाके विलास सूँ सम्पूर्ण व्रजांगनाएँ मोहित होय रही हैं ।।२०।।

वृन्दावने मिलनमाशुभविष्यतीति,
चिन्तेऽवलंबन मरिंदम सर्वदासीत् ।
तत्रापि मे सपदि ना भवदीश यत्तत्,
किं नो मनीषितमिदं नु तव व्रजेश ।।२१।।

हे शभु को दमन करने वारे ! हमारे मन में सर्वदा यह अवलम्बन हतो, कि वृन्दावन में आपकौ शीघ्र मिलाप होय जायगौ । हे स्वामिन् ! वहाँ भी इस समय में वह मिलाप नहीं भयौ, सो हे व्रजेश ! यह आपकौ कौन सौ विचार है ।।२१।।

भवद्विलंबित महा-प्रहारदलिताशयाम्।
प्रतिलक्षणमहामोह-मग्नां जीवयिता नु कः ॥२२॥

हे नाथ ! आपके विलम्ब रूपी महा प्रहार सूँ विदीर्ण हृदय वारी तथा प्रतिक्षण महामोह में मग्न ऐसी जो मैं, ताकौ कौन जिलाइवे वारौ है ॥२२॥

अतीते परं प्राण-प्रियत्वत्संगमावधौ।
जाने न शतधापन्नो, दलत्याशु मदाशयः ॥२३॥

हे प्राणप्रिय ! आपकी समागम की अवधि बीत जाने पर हमारौ हृदय सौ टुकड़ा होयकें शीघ्र विदीर्ण होय जायगौ, ये मैं नहीं जानूँ हूँ ॥२३॥

भवानजभवादिभि-र्दुरधिगम्य वार्तः क्व वा।
क्व मूढ़ हृदया विभो, पशुममाहमाभीरिका ॥
तथापि तव विभ्रम-स्मित विमोहितं मे मन।
स्त्वयि प्रिय विश्रृंखलं, भवति किं करोम्यातुरम् ॥२४॥

हे नाथ ! आपकी वार्ता भी ब्रह्मा शिवादिकों से भी दुरधिगम्य है, अर्थात् आपकी वार्त्ता करने के भी वो अधिकारी नहीं हैं। वे विभो ! (सर्व समर्थ) ऐसे तो आप कहाँ और मूढ़ हृदय वारी तथा पशु के समान अहीरिनी हम कहाँ, तथापि हे प्रिय ! आपके विलाश तथा मन्द-मुस्कान सूँ मोहित हमारो मन आतुर होय करकें आपमें विश्रंखल होय है अर्थात् स्वच्छन्द होयके आपको चाहे है सो मैं कहा करूँ ॥२४॥

प्रेष्ठ त्वयि प्रणयिता, ममास्तीत्यपि नो मतिः।
त्वदंगसंगविरहे-ऽप्यंग जीवामि यद् वृथा ॥२५॥

हे प्रियतम ! हे अंग ! आपमें स्नेह युक्त हमारी बुद्धि है, ये भी नहीं है, कारण कि आपके अंग संग के विरह में जो हम वृथा ही जी रही हैं ॥२५॥

॥ श्रीगुसांईजी विरचित पञ्चम् विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

⁂

॥ षष्ठ-विज्ञप्ति ॥

क्षणमपि न वियुक्ता, जातु तस्माद्भविष्या-
म्यहमिति हृदये मे, निश्चयः सर्वदासीत् ।
व्यरचि यदि विधात्रा, केवलो विप्रयोगः
कथय किमथ कार्यं, दुःखिता जीवितेन ॥१॥

अरि सखी ! हमारे मन में सर्वदा ये ही निश्चय हतौ, कि प्राणनाथ से क्षण मात्र भी कभी भी अलग नहीं रहूँगी, परन्तु ब्रह्मा ने केवल हमारे लिये यदि विप्रयोग ही रच दियौ तो कहो सखी ! इस दुःख रूपी जीवन से कहा करनों हैं ॥१॥

सखि बहुधापि निरुक्त-चरण स्पृष्टोऽपि जीविताधीशः ।
नो मनुते निजसंगम-महह कथं तत्र किं कुर्मः ॥२॥

हे सखी ! तुमने प्राणनाथ से बहुत कही, उनकौ चरण स्पर्श भी कीनों परन्तु जीविताधीश ! अपनों समागम करायवो नहीं चाहे हैं, बड़ी खेद की बात है, तहाँ अब कहा करें ॥२॥

सखि त्वया महानेव, प्रयत्नो मत्कृतो कृतः ।
तथापि यत्तदप्राप्ति-स्तत्र ते किन्नु दूषणम् ॥३॥

हे सखी ! तेनें हमारे लिए महान् प्रयत्न किये, तो भी यदि उनकी प्राप्ति नहीं भई तौ सखी ! अब तेरौ कहा दोष है ॥३॥

सखि सह ऋतुः “स च दिवसः सा”,
घटिया हन्त स क्षणः कोऽपि।
भविता यस्मिन् व्रजपति-
मादरपूर्वं समाश्लिष्ये ॥४॥

हे सखी ! बड़ी खेद की बात है, वह कौनसी ऋतु है, कौनसौं दिन है, कौनसी घड़ी है, कौनसौ क्षण है कि जिसमें व्रजपति को आदरपूर्वक आलिंगन करूँगी ॥४॥

दधौ कमपराधं वा, हृदये हृदयप्रियः।
तन्न जाने यन्निजांग-संगमंगीकरोति न ॥५॥

हे सखी ! हृदय के प्यारे ने अपने हृदय में कौनसो अपराध हमारो धारण कर लियो है, जासों अपनों अंग संग करायवौ अंगीकार नहीं करें हैं। वाको मैं नहीं जानूँ हूँ ॥५॥

सखि वद यादवपुंगवमति-चिरविरहादहानि गणयंती।
प्रणय-भुजंगमदष्टा, त्वधरसुधया परं जीवेत् ॥६॥

हे सखी ! यादवन में श्रेष्ठ श्यामसुन्दर सों कहो, कि एक सखी बहुत काल के विरह होयवें सूँ अपने संयोग के दिनन को गिन रही हूँ। तथा प्रेमरूपी सर्प ने वाकूँ डस लियौ है। अब तो केवल आपके अधर सुधारस सों जीवेंगी ॥६॥

नान्यद्वक्तुमहं शक्ता, किमपि प्राण वल्लभम्।
जीयासुः परमंभोज-नेत्रापांगाश्चिरं तव ॥७॥

प्राणवल्लभ सों हम कुछ भी कहवें कूँ समर्थन नहीं हैं। अब केवल तुम्हारे कमल नेत्रन के कटाक्ष सों ही जीवेंगी ॥७॥

कदाचिद् गोपीशः, स्मरति यदि मामंबुजदृशां।

सभायामत्यार्ति-प्रणयभर संभावित हृदम् ।।
तदा मन्ये धन्ये, प्रियमुखसरोजं स्वनयनैः ।
कदाचित्पश्यामि, प्रियविरहतप्तैरिति सखी ।।८।।

हे सखी ! श्री गोपीजन के स्वामी कभी कमल नेत्रवाली जो श्री गोपीजन, उनकी सभा में अति आरती तथा प्रेम के विवशता सों द्रवीभूत हृदय वारी जो मैं सो कहा मेरो स्मरण करे हैं ? हे सखी ! यदि करें हैं, तो हम अपने को धन्य मानें हैं। प्राणनाथ के मुखकमल को कभी देखूँगी (दर्शन करूँगी) ।।८।।

सत्स्वपि सरस्सु विमले-ष्वलिहंसाली विनोदमधुरेषु ।
अम्बुदविमुक्तपयसि चातक ते दुराग्रहः कोऽयम् ।।९।।

हे चातक ! हंस भ्रमरादिकन कौ सुन्दर मधुर ध्वनि सौं जिसमें विनोद होय रह्यौ है ऐसे विमल सरोवर के रहते भी वृष्टि करकें निवृत्त होय गयौ जो मेघ वामें तुम्हारौ यह दुराग्रह होय रह्यौ है, कि स्वाति नक्षत्र कौ भी जल पीवेंगे ।।९।।

तं न पश्यामि यं श्याम-सुन्दरं दर्शयेत् सखि ।
यद्वा हृत् ताप हृत्कृष्ण-संदेशं कथयेदपि ।।१०।।

हे सखी ! वाकूँ मैं नहीं देखूँ हूँ, जो श्यामसुन्दर कौ दर्शन करावें अथवा हृदय के ताप को हरण करवे वारौ जो श्रीकृष्ण कौ सन्देशा भी कोई आयकर कहै, वाकूँ भी नहीं देखूँ हूँ ।।१०।।

भवदुक्तिसुधाधारा-शिशिरीकृतमप्यहम् ।
क्षणमप्याशयं शक्ता, न स्थापयितु मातुरम् ।।११।।

हे सखी ! तुम्हारे कथन रूपी सुधा कौ धारा सूँ शीतल करी हुई भी मैं प्राणनाथ के लिए अपने आतुर हृदय कौ स्थापन

करवें कूँ क्षणमात्र भी समर्थ नहीं हूँ ॥११॥

कर्त्तव्यमेव तव तावदये कथंचित्-
प्राणेशसंग-विरहाकुल-मानसायाः ।
प्रेष्ठावलोकनयने सकृदप्यनंग,
कोटिस्मयापह मुखाम्बुमुष्टदृष्टेः ॥१२॥

हे सखी ! प्राणेश के समागम कौ जो विरह वासों व्याकुल हृदय वारो जो मैं, तथा कमल के गर्व कौ दूर करवे वारौ जिनको मुख कमल, ऐसे मुखकमल से चुराई गई है दृष्टि जिनकी ऐसी जो मैं ताकूँ किसी तरह सूँ प्रियतम को अवलोकन होय जाय ऐसी कृति करौ, यही तुम्हारौ कर्तव्य है ॥१२॥

ग्रीष्मेऽप्युदग्रतापे, नवनीरददर्शनाशयारहिते ।
आर्तश्चातकविहगो, नाशां त्यजति प्रिये जीवन् ॥१३॥

अति उग्र जामें ताप होय रह्यौ है, जामें नूतन जलधर (मेघ) के दर्शन की भी आस नहीं है, ऐसे ग्रीष्मकाल में भी जो विचारो चातक पक्षी सों अपने प्रिय में जीवन की आस लगाय रह्यो है। आशा त्याग नहीं करे हैं ॥१३॥

दूरे जलास्वादकथा, यत्र नाप्यभ्रदर्शनम् ।
तथापि चातको जीवत्-यहो कठिनता हृदः ॥१४॥

जहाँ कि मेघ के दर्शन भी नहीं है और जल के आस्वादन की कथा दूर रही तथापि चातक जीवै है। ओ हो ! कितनों कठिन हृदय है ॥१४॥

इदमेव बहुत्वेन, जानामि न तु चातकः ।
मुहुः स्वप्रेष्ठनामापि, कण्ठे यदनुवर्तति ॥१५॥

मैं तो इतनों को ही बहुत करके जानूँ हूँ, चातक नहीं जानें है कि क्षण-क्षण में अपने प्रिय कौ नाम वाके कण्ठ में विद्यमान रहे है। क्षण-क्षण में अपने प्रिय के नाम की रटन कियौ ही करे है ॥१५॥

प्रियावमानिता याति, यद्यपि प्रमदा मदात्।
तथापि तामनन्यं स, नेष्टे नाथ उपेक्षितुम् ॥१६॥

हे हाथ ! यद्यपि पिय के अपमानित होय करकें स्त्री अपने यौवन के मद सूँ चली भी जाय तथापि अन्यन्त गति वारी जो मैं हूँ, सो वाकी उपेक्षा करनों उचित नहीं है ॥१६॥

यथा कथंचित् तामेव, सनाथी कुरु ते मदात्।
तत्प्राणा सापि तेनैव, पूर्णा भवति नान्यतः ॥१७॥

जैसे तैसे अपने वश में करके वाकूँ सनाथ करनों चाहिए। कारण वाके प्राणन की पूर्ति अपने प्रियतम से ही होयगी ॥१७॥

चातकी यदिमहानिलवेगात्-प्राप्तवत्यचलतोमरूदेशम्।
कस्तदा जलमुचो ननु दोषः, प्राणितीयमिदमेव हि चित्रम् ॥१८॥

यदि विचारी चातककी महा पवन के वेग की झकोरा सों मरुदेश में प्राप्त होय गई, तो मेघ कौ कहा दोष है। प्राणिन कौ जैसौ प्रारब्ध होय है, वैसी ही होय है, यही आश्चर्य है ॥१८॥

ज्ञानिनो विगतरागिणोमनो, रोधका वदत बोधका नृणाम्।
प्राप्तमुक्तिहरिभक्त्योऽस्ति किम्, गोत्रनाथचरणं विनारणम् ॥१९॥

हे ज्ञानियों !हे वैरागियों ! हे मन के वश में करवे वारो ! हे सब मनुष्यन कूँ उपदेश करवे वारो ! हे प्राप्त मुक्ति बारे ! हे हरी भक्ति वारे ! तुम सब लोग मिल करकें कहो कि श्रीगोवर्धननाथजी के

चरणारविन्द के बिना कहीं शरण नहीं है ॥१९॥

गोवर्धनाचलसिरोमाणरेष यावन्,
मत्स्वामिनी-हृदय-कुंकुमपंकिलांगः।
मन्मूर्ध्निमद्-हृदय-पंकजमण्डलेषु,
संशोभते, न भयमस्ति कुतोपि तावत् ॥२०॥

हमारी स्वामिनी श्रीगोपीजन के हृदय केशर सूँ युक्त (लिप्त) अंग वारे श्रीगिरिराज जी के शिरोमणि श्यामसुन्दर जब ताईं हमारे मस्तक पर विराजमान हैं, तथा हमारे हृदय कमल के मण्डल में शोभित होय रहे हैं, तब ताईं हमकों कहाँ से भय है। अर्थात् कहीं से नहीं है ॥२०॥

कृतज्ञता कृपालुत्व-विश्रामस्य प्रियस्य मे।
प्राप्तिस्तत्कृपयैवालि, भाविनीति मतिर्मम ॥२१॥

हे आलि ! कृतज्ञता तथा कृपालुता को स्थानभूत हमारे प्रियतम की प्राप्ति तुम्हारी कृपा से ही होयगी, ऐसी हमारी मति है ॥२१॥

अनाज्ञप्तैवाहं, प्रियतममनोवाक्कृतिभिर-
प्यभाग्यैरद्याहं प्रचलितवती यत् प्रियपदात्।
न तच्चित्रं दुःखं, भवति भवतात्किं तु कथम-
प्युदारं तद्वक्त्रं, नयनपथ आस्तामच्चिरतः ॥२२॥

हे सखी ! प्रियतम ने मन सों, चाहें वाणी सों, चाहें कृति सों, कोई प्रकार सों अपने पास सों आइवे की आज्ञा नहीं दिये, मैंने अपने मन्दभाग्य सों ही प्रियतम के चरणारविन्द के समीप सों चली आई, यासूँ हमकूँ जो दुःख होय है, यामें आश्चर्य नहीं है, किन्तु अब तो किसी प्रकार से उदार जो उनकौ मुखकमल

सो शीघ्र ही हमारे नेत्रन के विषय हों अर्थात् हमारे नेत्र उनकौ दर्शन करें ॥२२॥

प्रतिगच्छत्विह लोकः, परलोकाशापि सर्वथैवाद्य ।
मा त्यजतु मामनन्यां, जातु परं गोकुलाधीशः ॥२३॥

हे सखी ! अब तो यह लोक हमारो भले ही चल्यौ जाय और परलोक की आश भी भले ही नष्ट होय जाय, परन्तु अनन्य गति वारी जो मैं ताको गोकुलाधीश कभी त्याज्य नहीं करेंगे ॥२३॥

यादृशी तादृशी नाथ, त्वत्पादांबुजकिंकरी ।
त्वद्वक्त्रं कथमप्याशु, कुरु दृग्गोचरं मम ॥२४॥

हे नाथ ! मैं जैसे तैसे आपके ही चरणारविन्द की किंकरी हूँ, यासूँ अपनों मुखारविन्द किसी भी प्रकार सूँ शीघ्र हमकूँ दृष्टिगोचर करो ॥२४॥

यदवधि गोपीनाथोदृग्विषयोऽभून्ममापि मंदायाः ।
तदवधि शिवमेवासीदग्रे किं वा विधास्यति प्रेष्ठः ॥२५॥

हे सखी ! मन्दभाग्य वारी जो मैं ताको जब ताईं श्रीगोपीनाथ दृष्टिगोचर रहें तब ताईं मोकूँ शुभ रह्यौ, अब आगे न जाने प्रियतम कहा करेंगे ॥२५॥

॥ श्री गुसांईजी विरचित षष्ठ विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

* * *

॥ सप्तम–विज्ञप्ति ॥

प्रतिक्षणनवं मुदा, मुहुरहर्निशं यत्पिब-
स्यसिप्रियमुखाम्बुजा-सवमतोऽसि धन्या सखि ।

कदाचिदतिसुन्दर-स्मितमुखः सुखेनास्थितो-
भवत्सदसि मत्प्रियः, स्मरति मां कृपावारिधिः ॥१॥

हे सखी ! प्रतिक्षण नूतन-नूतन पल्लव प्रतीत होयवे वारौ प्यारे के मुखारविन्द कौ मकरन्द ताकूँ तुम रातदिन हर्ष सों पान करौ हो ! यासों हे सखी ! तुम धन्य हो ! तुम्हारी सभा में सुख सों विराजमान हमारे प्रियतम अति सुन्दर मन्द मुस्क्यान करते भये कृपा के समुद्र हमारो स्मरण कभी करें हैं ॥१॥

प्रियवदनाम्बुजदर्शन-कातरचित्तां तथापि संविग्नाम्।
त्वसखि नो जानेऽहं, किं नु विधास्यत्ययं प्रेष्ठः ॥२॥

हे सखी ! प्रियतम के मुखारविन्द के दर्शन की अभिलाषा सों कातर चित्तवाली तथा सविग्न होय रही हूँ। ऐसे हमारे प्रति वह प्रियतम कहाँ विधान करेंगे, वाकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ ॥२॥

वियुक्ते नाथे यद्-विपदनुपदं तत्समुचितं।
वियोगस्तेनायं मम समुचितोन्यत्र तु परम्॥
तथापि श्रीराधा-हृदयमणिरत्यन्त कृपया।
स्ववक्त्रेन्दुं गोपी-पतिरचिरतो दर्शयतु मे ॥३॥

हे सखी ! नाथ सूँ वियोग होयवे में जो प्रतिक्षण विपद की प्राप्ति है, सो उचित है, तासूँ हमकूँ वियोग सम्बन्धी जो दुःख प्राप्त भयो है, सो उचित ही है, अन्यथा अन्य को अपने नाथ के वियोग में अन्य दुःख प्राप्त होय है। हममें वियोग रूपी दुःख प्राप्त भयौ हैं, तथापि हृदय के मणिरूप श्री राधिकाजी की अत्यन्त कृपा सूँ श्री गोपीजन के पति अपने मुखारविन्द् को दर्शन शीघ्र हमको करावें ॥३॥

किं बहुना सखि पान्थोऽप्यतद्वार्ता सविघ्नकर्त्तैव ।
तत् किं करोमिमग्ना, दुःखाब्धौ तत्प्रियः शरणम् ॥४॥

हे सखी ! बहुत कहवे सूँ कहा है (बहुत क्या कहें) कोई भ्रान्त है मार्ग चलवे वारौ सो वाहू सो यदि यह वाणी कहें तो विघ्न ही करें हैं, यासूँ दुःख के समुद्र में निमग्न जो मैं हूँ, सो कहा करूँ। या समय में प्रियतम जो हैं, वही रक्षक हैं ॥४॥

प्रिय निकटे सखि काचिद्यदि मां कृपया स्मरिष्यति प्रीता ।
तत्क्षण एव मनोरथनिचयान्यश्याम्यहं सत्यम् ॥५॥

हे सखी ! प्रियतम के समीप में यदि कोई सखी कृपा सों हमारो स्मरण करेगी, तो वाही क्षण में हमारे मनोरथ को जो समूह है, वाको मैं सत्य देखती हूँ। अर्थात् सत्य होय जायगी ॥५॥

परिजनहसनद्वेषैर्दुःखितमप्येतदातुरं चेतः ।
न जहाति तत्स्वभावं, तत्साधु न वेति नो विद्मः ॥६॥

अपने कुटुम्ब के हास्य रूपी द्वेष सूँ ये दुःखी भी हमारौ आतुर चित्त वा स्वभाव कूँ नहीं छोड़े है। सो यह अच्छो है अथवा नहीं याकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ ॥६॥

यावत्स्वकार्यं तावत्तु, कृतमेव सखि त्वया ।
मद्भाग्योन्नतिकाले स, स्वयं मे कृपयिष्यति ॥७॥

हे सखी ! तुम्हारी जितनों कार्य हतौ वाकूँ तुमनें अच्छी भाँति सों कीनो, अब हमारे भाग्य कूँ जब उन्नति कौ समय आवेगो, तब प्रियतम स्वयं कृपा करेंगे ॥७॥

न सुखमापरमा न च चातुरी, मयि मनोभवयुद्धविदग्धता ।
न मधुरोक्तितथौ न रसश्चकोऽप्यति कथं भविता प्रियसंगमः ॥८॥

हे सखी ! हमारे में कोई परम सुखमा भी नहीं है, अर्थात् कोई श्रेष्ठ सुख की सामग्री भी नहीं है, न हमारे में चातुर्य है। कामरूपी संग्राम में लड़वे की निपुणता भी नहीं है, और मधुर भाषण भी नहीं हैं न और ही कोई रस हमारे में है, कैसें प्रियतम कौ समागम होयगौ ॥८॥

रतिपतिमंगलकलशौ, कुचकुम्भौ मीनकेतुरसपूर्णौ।
कमलावर करकमल–स्पृष्टौ भवता वृथैविमौ ॥९॥

कामदेव के मंगल कलश रूप हमारे दोनों कुच रूपी कुम्भ कामदेव के रस सों पूर्ण, जिन कुचन कूँ लक्ष्मीजी के पति श्यामसुन्दर ने अपने श्रीहस्त सों स्पर्श कियो है, सो यह उनके सम्बन्ध के बिना व्यर्थ होय रहे हैं ॥९॥

गता बुद्धिः शुद्धि–र्जगति विरुणद्धिस्वपतिर–
प्यये लज्जागुर्वो, गुरुपतिसुतानां न गणिता।
यदर्थं तत्संग, सखिन भविता यद्यचिरत–
स्तदा नाहं पश्याम्यहहमरणादन्यदरणम् ॥१०॥

हे सखी ! जिनके लिए जगत् में हमारी बुद्धि भी चली गई, तथा शुद्धि भी चली गई, अपने पति को विरोध भी कियो, तथा गुरुजन पति–पुत्रों की श्रेष्ठ लज्जा की गणना भी नहीं कीनी। यासूँ हे सखी ! यदि शीघ्र ही उनकौ समागम नहीं होयगौ, तब बड़ी खेद की बात है, मृत्यु के सिवाय दूसरो शरण नहीं दीखै है, अर्थात् मर जानों ही अच्छौ प्रतीत होय है ॥१०॥

वरं नेत्रे मुद्रा, न पुनरितरालोकनमपि,
वरं शून्यारण्यं, स्थितिरिहवरं नान्य मिलनम्।

वरं मूकीभावो, न पुनरपरा काचनकथा,
वरं प्राणत्यागः, क्षणमपि न तत्संगविगमः ॥११॥

हे सखी ! नेत्र बन्द कर लेंनो अच्छौ, परन्तु अन्य कौ देखनों अच्छो नहीँ, गूँगों होय जानों अच्छौ, परन्तु अन्य सों भाषण करनों अच्छो नहीं । प्राण छोड़ देनों अच्छौ, परन्तु क्षणमात्र उनको वियोग होनों अच्छौ नहीं है ॥११॥

भगवत्पदपंकजरागजुषो, न हि युक्ततरं मरणेपि तराम् ।
इतराश्रयणं गजराजगतो, न हि रासभमप्युररी कुरुते ॥१२॥

भगवान् के चरणारविन्द के मकरन्द कौ जो सेवन करवे वारौ है, उनको मृत्यु रूपी दुःख के समय में भी अन्य को आश्रय करनों अच्छौ नहीं, जैसे हाथी की असवारी करवे वारौ गर्दभ की सवारी स्वीकार नहीं करै है ॥१२॥

अनन्यगोकुलस्वामिन्-ननन्यीकृतगोकुल ।
मां कुरुष्व दयासिन्धो, त्वत्पादाम्बुजरेणुषु ॥१३॥

हे आनन्द ! श्री गोकुल के स्वामिन् ! आपने ही गोकुल को आप अनन्यता युक्त कियौ है । यासूँ हे दया के समुद्र हमकूँ भी अपने चरण कमल की रेणु में ही स्थापन करौ ॥१३॥

स्वतः कृता कृपानाथ, किशोरे मपि या त्वया ।
सा किमाशालतावृद्धि-फलिकैवोत सत्फला ॥१४॥

हे नाथ ! किशोर अवस्था में स्वयं आपने जो हमारे ऊपर कृपा करी सो वह हमारी आशारूपी लता बढ़ करकें सुन्दर फल कूँ उत्पन्न करवे बारी होवेगी क्या ?॥१४॥

भवतीति न जानामि, सर्वसामर्थ्यसंयुता ।

त्वदीयास्मि त्वदीयास्मि, त्वदीयास्मि व्रजाधिप ॥१५॥

या बात कूँ मैं नहीं जानूँ हूँ, कारण कि वो आपकी कृपा सर्वसामर्थ्य संयुक्त है। हे व्रज के अधिपति ! हम आपकी हैं, हम आपकी हैं, हम आपकी हैं ॥१५॥

यादृशांस्तादृशांस्त्वं तु, मा त्यजास्मान् दयानिधे।
एतावदेव विज्ञाप्यं, सर्वथा सर्वदैव नः ॥१६॥

हे दया के निधि ! जैसी मैं हूँ, तैसी को आप त्याज्य मति करो, हमकूँ सर्वदा निश्चय करकें इतनी ही प्रार्थना करनी है ॥१६॥

स्वल्पेनैवापराधेन, महता वा व्रजेश्वर।
अस्मानुपेक्षसे त्वं तु, स्वकीया किं ब्रुवे तदा ॥१७॥

हे व्रजेश्वर ! थोड़े चाहें बहोत अपराध सूँ यदि हमारी उपेक्षा करोगे, तो आपके जन आपको कहा कहेंगे ॥१७॥

त्वदीयत्वं निश्चतं न-स्तव भर्तृत्वमप्युत।
कालकर्मस्वभावानामीशितृत्वमपि प्रभो ॥१८॥

हे प्रभो ! निश्चय ही हम आपकी हैं, और आप हमारे पति हैं यह भी निश्चय है और काल कर्म स्वभाव के भी आप स्वामी हैं, यह भी निश्चय है ॥१८॥

अतः कालादिजं दुःखं, भवितुं च न नोऽर्हति।
अपराधेऽप्युपेक्षा तु, नोचिता सेवकेषु ते ॥१९॥

यासों काल, कर्म एवं स्वभाव सों उत्पन्न भयौ दुःख, मेरे कूँ होनों उचित नहीं, कारण अपराध होयवे पर हूँ, अपने सेवकों की, अपने दास की उपेक्षा करनी आपको उचित नहीं है ॥१९॥

उपेक्षयैव कालादिर्भक्षयत्यन्यथा न हि।
बहिर्मुख्यात्कालजातं, दुःखं चेत्सहजं हि तत् ॥२०॥

आपकी उपेक्षा करवे सूँ ही कालादिक भक्षण करें हैं, अन्यथा नहीं और आपकी बहिर्मुखता होयवे सूँ ही काल से उत्पन्न भयौ दुःख सौ सहज ही होय है ॥२०॥

तद्वैपरीत्यं कृपया, भाविन्यैवान्यथा न हि।
दोषाश्रयत्वं सहजं, ज्ञात्वैव ह्युररीकृतिः ॥२१॥

अब याकी विपरीतता अर्थात् कालादिक भक्षण न करें, और बहिर्मुखता न होय यह बात आपकी कृपा सूँ ही सम्भव है, अन्यथा नहीं, हमारे में दोष को आश्रयत्व सहज ही है, इस बात कूँ जानकें ही आप अंगीकार कीये हो ॥ २१॥

अतो दोषक्षयोपेक्षा, कृपालौ त्वयि नोचिता।
उपेक्षां कि नु सहज, प्रभुत्वेन करोषि वा ॥२२॥

यासूँ हमारे दोष की निवृत्ति के ताईं हमारी उपेक्षा करनी कृपालु जो आपसों उचित नहीं है, अन्यथा सहज प्रभुत्व आप में है, यासूँ उपेक्षा करौ हो ॥२२॥

दण्डं स्वकीयतां मत्वे-त्येवं चेदिष्टमेव नः।
अस्मासु स्वीयतां मत्वा, यत्र कुत्र यदा तदा ॥२३॥

हे प्रभो ! हमकूँ आपनों मानकें आप जहाँ कहूँ पर जब कबहू दण्ड देउगे, तो वो हमें अच्छौ ही है ॥२३॥

यद्यत्करिष्यत्यखिलं, तदस्तु प्रतिजन्मनि।
इदमेव सदा प्रार्थ्यं, त्वदीयत्वं व्रजेश्वर ॥२४॥

हे व्रजेश्वर ! आप जो कछू करें, सो हमकूँ प्रतिजन्म होय, परि

सदा यह ही प्रार्थना, कि हम आपके हों ॥२४॥

दुःखासहिष्णुस्त्वन्तोऽहम् तथापि प्रार्थते प्रभो ।
तथैव सम्पादय नो, नापराधो यथा भवेत् ॥२५॥

हे प्रभो ! आपके वियोग से प्राप्त भया जो दुःख सो अहिष्णु है, अर्थात् सहन नहीं होय है। तथापि हम आपसे ये ही प्रार्थना करे हैं कि आप हमारे प्रति यही सम्पादन करो, कि जिसमें हमारे हाथ सूँ अपराध ही नहीं बनें ॥२५॥

// श्री गुसांईजी विरचित सप्तम् विज्ञप्ति समाप्त //

॥ अष्टम्-विज्ञप्ति ॥

अपराधेपि गणना, नैव कार्या व्रजाधिप ।
सहजैश्वर्यभावेन, स्वस्य क्षुद्रतया च नः ॥१॥

हे व्रज के अधिपति ! हमारे अपराध की गणना करनों आपको कर्त्तव्य नहीं है, कारण कि आपमें सहज ईश्वर धर्म है, और हमारे में जीव धर्म है, सो सहज ही क्षुद्रता है ॥१॥

त्वदीयत्वं यन्न-स्तदतिशयितं भाग्यमतुलं,
समीपस्थानाम-प्यहह न विलासेक्षणमिदम् ।
अभाग्यं वात्युच्चं, सपदि गणयामः किमधिकै-
र्वचोभिः सर्वस्वं, त्वमसि यदि गोविन्दमनुषे ॥२॥

हे गोविन्द ! हम जो आपकी हैं, सो अतुल हमारे भाग्य हैं और आपके ही समीप में रह करकें बड़े ही खेद की बात है कि आपकी विलास पूर्वक जो निरीक्षण है वाकौ दर्शन नहीं होयवे सूँ इससे अधिक वाणी सूँ अभाग्य की गणना या समय में हम

कहा कहें, आप मानों तो हमारे आप ही सर्वस्व हों ॥२॥

सर्वे परिगृहीताः स्मो, गोकुलस्वामिना वयम् ।
न त्यक्षति दयासिन्धुरस्माननन्यायिनोपि हि ॥३॥

श्री गोकुलेश के स्वामी सूँ ही हम सब लोग अंगीकार किये गये हैं, तासों दया के सिन्धु, जो प्रभु सों हम अन्यायी भी हैं, तो भी हमको त्याज्य नहीं करेंगे ॥३॥

स्वकृत्याभिर्भवत्येव, तथापि करवाणि किम् ।
तथापि गतिरस्कारं, स एवेति न भीरपि ॥४॥

अपनी कृति सूँ ही ऐसौ होय है, तथापि हम कहा करें । तथापि हमारी गति रूप वो प्रभु ही है, यासूँ हमको भय नहीं है ॥४॥

यथा वयं तदीयाः स्म-स्तथा सोऽपि निसर्गतः ।
अस्मत्प्रभुरतश्चिन्ता, नैहिके पारलौकिके ॥५॥

जैसे हम उनके हैं, वैसे ही वो भी स्वभाव सूँ ही हमारे प्रभु हैं, यासूँ या लोक तथा परलोक में हमें कुछ चिन्ता नहीं है ॥५॥

चिकीर्षितं कारयित्वा, शीघ्रमानेष्यति प्रभुः ।
अस्मानतो न चिन्ता वः, कार्या सर्वात्मना प्रियाः ॥६॥

हे प्रिये ! प्रभु कूँ जितनों कार्य करनों है, सो हमसे उतनों ही करायकें शीघ्र उनके पास हमको बुलाय लेइंगे, यासूँ हे प्रिय सखियों ! कोई बात की चिन्ता तुम मत करियो ॥६॥

एतेषामहमेवास्मि सर्वस्वमिति सुन्दरम् ।
जानास्यस्माकमज्ञानेऽप्यतः कर्तास्वतोऽखिलम् ॥७॥

इनको तो सर्वस्व और सुन्दर हम ही हैं । इस बात को सखी तुम जानती हौ, यासूँ हमारे अज्ञात में भी स्वतः सम्पूर्ण के

कर्त्ता वो ही हैं ॥७॥

अंगीकृतजनजनिता-ऽपराधकूटक्षमाविनोदस्य ।
अंगीकृतिश्चनित्या, वदन्तु कोऽन्योस्यसाम्यमियात् ॥८॥

अंगीकृत जन संबंधी अपराध के समूहन को भी क्षमा करवो जिनको लेख है, और जिनकी अंगीकृति भी नित्य ही है, अर्थात् वो जिनकूँ अंगीकार करें हैं, तिनको छोड़े नहीं हैं, तब कहो सखी ! इनकी बराबरी कौन कर सकै है ॥८॥

न स्वाध्यायबलं न यागजबलं नो वा तपस्याबलं ।
नो वैराग्यबलं, न योगजबलं, नाप्युक्तभक्तेर्बलम् ।
नैव ज्ञानबलं न चान्यदपि यत्-किंचिद्बलं मेऽस्ति किम् ।
त्वद्यश्वोपि यदा तदा तव कृपा कूतेक्षणं मे बलम् ॥९॥

न तो वेदाध्ययन को ही बल है, न तो यज्ञ सों ही उत्पन्न भयौ बल है, न तपस्या को ही बल है, न वैराग्य को ही बल है, न योग सों उत्पन्न भयौ बल है । शास्त्र में कही भई जो भक्ति वाको भी बल नहीं है, न ज्ञान को ही बल है, न अन्य कोई दूसरो बल मोमें है, किन्तु आज चाहें कल जब कृपा कटाक्ष सों बुलाओगे वह ही हमको बल है ॥९॥

तुच्छीकृतास्तवत्कृपातः, पूर्वं कालादयो मया ।
स्मृत्वा तद्वैरमधुना, बान्धते त्वत्कृपां विना ॥१०॥

हे नाथ ! पहले आपकी कृपा के बल से कालादिकन को तुच्छ कर दिये थे, सो उस बार की याद करकें इस समय में आपकी कृपा की शून्यता जान करकें कालादिक हमकूँ बाधा करें हैं ॥१०॥

यस्य देयो लोभ एव, तस्यौदार्यस्म का कथा।
सर्वस्व दानशीलत्वं चित्रं पात्रपरं परम् ॥११॥

जिसको दैवे में लोभ होय है, उसकी उदारता की कौनसी कथा है, अर्थात् वो कहाँ से दे सके है ? परन्तु हे नाथ ! आप सर्वस्व दानशील हो ! अर्थात् अपने को भी दै देओ हो। ऐसे होकर भी यदि आप पात्र कौ विचार करो, दान करवे में तो महान् आश्चर्य है ॥११॥

ततः काचिदनंगाग्नि-तप्ता त्वं यदवीवदत्।
मत्पुरस्तच्छृणुवेति, वद यादवपुंगवम् ॥१२॥

हे सखी ! काम रूपी अग्नि से सन्तप्त जो मैं होय रही हूँ, सो तुम जो मेरे से कह रही हो, सो पहले मेरौ बात सुनकर तुम जाइकें यादवन में श्रेष्ठ श्यामसुन्दर सों कहो ॥१२॥

शिशिरत्वं शशिनस्त्वत्कृपावलोकनकृतं मन्ये।
नो चेद्गत्तवति भवति प्रचण्डकिरणाः कथं सपदि ॥१३॥

चंद्रमा में जो शीतलताई है, सो आपके कृपा पूर्वक अवलोकन करवे सूँ ही है, ऐसो मैं मानूँ हूँ, नहीं तो वो कृपा अवलोकन के चले जाइवे सूँ या समय में वो चंद्रमा की किरण क्यों तीक्ष्ण प्रचण्ड होय रही है, हमको जलाय रही है ॥१३॥

त्वदधरसुधा-पानेन श्री-मुखाम्बुजशोभया,
तुहिनकिरण-स्तुच्छीभूतो, बभूव परं प्रिय।
सपदि मम तद्-वैरं स्मृत्वा-शुशुक्षणि संनिभैः,
मदनदहनो दग्धुं ह्येतद्-दुनोति निजांशुभिः ॥१४॥

हे प्रिय ! आपके अधर सुधा के पान करवे सूँ तथा आपके

मुखारविन्द की शोभा सूँ चन्द्रमा की किरण को भी हमने तुच्छ कर दियौ हतो। या समय में वा वैर कौ स्मरण करके अग्नि के सदृश अपनौ तीक्ष्ण किरणों से वह चन्द्रमा, एक तो हम कामदेव सों ही जल रही हैं, और भी वो हमको जलाइवे कूँ कम्पायमान कर रह्यौ है ॥१४॥

यदि कृपयति राधा बाधिता शेष बाधा।
किमपरमवशिष्टं, पुष्टमर्यादयोर्मे ॥
वदति यदि कथंचित्, स्मेरहासोदित श्री।
द्विजवरमणिपंक्त्या, मुक्ति शुक्त्या तदा किम् ॥१५॥

यदि श्रीराधा कृपा करें तो हमारी सम्पूर्ण बाधा नष्ट होय जाय, और पुनः हमको पुष्टि तथा मर्यादा में कहा बाकी रहेगो ? जबकि आपकी कृपा हो गई और जब कृपा करकें कुछ हमसे भाषण करेंगी तो वा समय में आपके मन्द मुस्क्यान से उत्पन्न भई जो शोभा सों युक्त जो मणि पंक्ति रूप आपकी दन्तावली के दर्शन होंयगे, तो मुक्ति रूपी सीप से हमें कहा प्रयोजन है ॥१५॥

स्त्रीरत्नहास-प्रभयाखिलांगे, तच्चुंवनैस्तत्-प्रतिविंवितैश्च।
तासां कटाक्षैश्च चतुर्युगीय रूपाणि, धत्से क्षणसो व्रजेश॥१६॥

हे व्रजेश ! आप सम्पूर्ण अंगों में एक क्षण में ही चारों युग सम्बन्धी रूप धारण करौ हो, कैसे कि स्त्रियों में रत्नरूपा श्री गोपीजन, वो श्री गोपीजन आपके समीप आइकें जब हास्य करें हैं, तो वा हास्य की कान्ति आपके श्रीअंग में पड़े हैं, सो वा समय में सतयुग सम्बन्धी स्वेतवर्ण आप हो जाओ हो, तथा आपको चुम्बन करै है, तो उनके अधर ओष्ठ की ललिमा

सों त्रेता सम्बन्धी आपकी लालवर्ण हो जाय है, तथा विपरीत रमण में जब उनको प्रतिबिम्ब आप में पड़ै हैं, तो द्वापर सम्बन्धी पीतवर्ण आपको हो जाय है, उनके कटाक्ष पड़वे सूँ कलियुग सम्बन्धी कृष्णवर्ण हो जाय है ॥१६॥

त्वमीश्वरोसि गीतं ते, क्षुद्रोहं किं वदामि हि ।
यादृशोऽसि हरे कृष्ण, तादृशाय नमो नमः ॥१७॥

हे नाथ ! आप ईश्वर हैं, हम क्षुद्र आपके गति कौ कैसे वर्ण' करें, यासों हे हरे ! हे कृष्ण ! जैसे आप हौ, तैसे आपको नमस्कार है ॥१७॥

स कोऽपि सखि सानन्द-नन्दाद्युत्मंगलालितः ।
करोति सुषमासीमा, मन्यथोन्मथितादिशः ॥१८॥

हे सखी ! नन्दादिकों के उत्सव (गोद) में आनन्द के सहित ललित अर्थात् जिनको आनन्द के सहित यशोदाजी तथा नन्दरायजी लालन कर रहे हैं। ऐसौ वह कौनसौ आनन्द है, कि जो कामदेव की व्यथा सों उन्मथित भी दिशाओं की सुखमा (सुख सम्बन्धी आनन्द) की सीमा किये दे हैं। अर्थात् जिस समय में काम की व्यथा सों समस्त दिशाएँ हमको विपरीत मालूम होय है, फिर उनके संगम सूँ सुखमय प्रतीत होय है ॥१८॥

अधरांजनदीप्तिमत्सुनासापुट, मुक्ताफलभूषणं तवास्यम् ।
सदृशं भवतीतिगोपिगुंजाफल, मुक्ता उरसींन्द्रिये बिभर्ति ॥१९॥

आपके अधर के ऊपर श्रीगोपीजन के अञ्जन की कान्ति प्रकाशित होय रही है और सुन्दर नासिका पुट में मुक्ताफल को भूषण धारण किये हैं। ऐसो जो आपको मुखारविन्द शोभित

होय रह्यौ है, और (श्री गोपीजन को गोद में लिये हैं, वो ही मानों गुञ्जाफल धारण किये हैं) गुञ्जाफल माला रूप श्रीगोपीजन को धारण करे हैं हृदय में ॥१९॥

रूपं तवै-तदतिसुन्दर नीलमेघ-
प्रोद्यत्तडिन्-मदहरं व्रजभूषणांगी।
एतत्समानमिति पतिवरं दुकूल-
मुरावुर-स्यपि बिभर्ति सदा स नाथः ॥२०॥

ये अति सुन्दर जो आपको रूप है, सो नील मेघ के मद को हरण करै है तथा आपके हृदय में विराजमान जो व्रज को भूषण रूप श्री गोपीजन सों वीजुरी के मद को हरण करे हैं, और वीजुरी के समान पीतरंग कौ जो श्रेष्ठ पिताम्बर उसको भी वो नाथ सदा हृदय में धारण करे हैं ॥२०॥

पुरो वात प्रावृट्-समय विरहे मेघ विरहात्।
सुतप्ताहं गन्तुं, पदमपि न शक्तादिह चेत्॥
समानो यो मेघः, पुनरपि कृपा शक्त्यखिलकृत्।
ततो मामेव त्वं नय निजगृहं तस्य झटिति ॥२१॥

पहले जामें वायु चलै है, ऐसौ जो वर्षा समय कौ विरह में मेघ रूपी श्यामसुन्दर के विरह सूँ अत्यन्त सन्तप्त जो मैं सो एक पाँव भी चलवे में सामर्थ नहीं हूँ, यासूँ हे वर्षा सम्बन्धी वायु ! मेघ के समान जो श्यामसुन्दर पुनः कृपाशक्ति सूँ सम्पूर्ण बात के करवे बारे, उनके पास शीघ्र हमको ले चलौ, चाहे हमारे घर में उनको शीघ्र लाओ ॥२१॥

नाथेऽनुकूलतां याते, सर्वं यात्यनुकूलताम्।

तस्मिंस्तदविपरीते तु, सर्वमेव भवेत्तथा ॥२२॥

जब नाथ अनुकूल होय हैं, और उनके विपरीत होयवे सूँ सब ही विपरीत होय जाय है ॥२२॥

यदि प्रिय सखीजनो, मयि कृपां करोति स्वयम् ।
विरुद्धशतमप्यहं, न गणये तथापि क्षणम् ॥
मनोरथलताश्रये, व्रजवधूवृतेस्मिन्नपि ।
व्रजाधिपतिरेव मे, शरणमस्तु दास्याः सदा ॥२३॥

यदि प्रिय सखीजन हमारे ऊपर कृपा करें तो सैकड़ों भी विरोधों को हम गणना नहीं करेंगी । तथापि (मनोरथ) के लता रूपी) व्रजवधून सों आवृत इस मनोरथ के लता रूपी आश्रय में हम जो दासी हैं, ताके सदा व्रजाधिप ही रक्षक हों ॥२३॥

अपि कापि सापि संप्रति, वरिवर्ति सखि व्रजाधिपप्राणा ।
या नन्दसूनुमुरली-तरलं चेतः समादध्यात् ॥२४॥

हे सखी ! व्रजाधिप के प्राणरूप ऐसी श्रेष्ठ सखी इस बाबत कौनसी है, जो नन्दनन्दन कौ मुरली सों चञ्चल चित्तवारी उनको समाधान करे ॥२४॥

आविर्भूतानुरागा वा, किं वाऽनगनवांकुरः ।
समुच्चयपदं वेति, न स निश्चयभूरभूत् ॥२५॥

वह प्रगट भयौ अनुराग है, कि वा वृक्ष कौ नवीन अंकुर है, अथवा समुच्चय पद है, सो कछु निश्चय ज्ञात नांहि होय है ॥२५॥

॥ श्री गुसांईजी विरचित अष्टम् विज्ञप्ति सम्पूर्णम् ॥

⁂

॥ नवम्‌-विज्ञप्ति ॥

स देशः कोऽन्वभूद्यत्र, रमणं ते सखीजनैः ।
स कालोपि यदा नास्ते, समाहूता स्ववेणुना ॥१॥

हे नाथ ! वो कौनसौ देश हे, जामें सखिन के साथ आपको रमण भयौ तथा वह काल भी कौनसो है, जामें रमण भयौ, जा समय में आपकी वंशी की ध्वनि से बुलाई भई हम लोग अपने घर में नहीं रहीं, आपके पास चली आईं ॥१॥

यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्यमवादीदिति श्रुतिः ।
तं प्रपन्नस्य मेद्यापि, कथं दुःखं न वेद तत् ॥२॥

जो सर्वज्ञ हैं, और सर्वशक्तिमान हैं, ऐसी वेद की श्रुति जिनको कहें हैं, तो ऐसे भी दयालु प्रभु हम जो उनकी शरण में प्राप्त भई है, सो या समय में वो हमारे दुःख को क्यों नहीं जाने हैं ॥२॥

हरे त्वन्नाम निर्वक्ति, यथा श्रुतरहं सदा ।
गृह्णामि यद्यथा नाथ, तत्तथैवास्तु नान्यथा ॥३॥

हे हरे ! आपके नाम को अर्थ है, वाकौ जैसी वेद की श्रुति कहे हैं, और हम वा नाम कूँ सदा ग्रहण करें हैं, सो जैसौ श्रुति कहें हैं, वैसौ ही हो, अन्यथा मत ही, अर्थात् श्रुति कहा कहें है, कि भगवान् के नाम को लेवै वारो सब दुःखन सों छूट जावै है ॥३॥

कथं स भुंक्षे सस्नेहमद्यत्वं प्रत्यहं यथा ।
इति पुष्टिस्मितः पातु, हरिश्चौर्यभुजिस्मृतिः ॥४॥

अब भगवान् की माखन चोरी लीला की स्मृति आयवे सूँ श्री गुसांईजी कहें हैं, एक सखी के घर पर ठाकुरजी पधारे हैं। कोई

कहै है, कि श्यामसुन्दर कैसे भोजन करे हैं, वाको उत्तर, स्नेह सहित करें हैं। तो फिर कोई पूछे है, कि या समय में आप हमारे घर में कैसे छिपके खाय रहे हो ? तो आप कहे हैं, जैसे प्रतिदिन खाय हैं, वैसे आज भी खाय रह्यौ हूँ। इस प्रकार सूँ पूछवे सूँ श्यामसुन्दर हँस दिये, तो माखन खाइवे की विरियाँ जो मन्द मुस्कान भयो, सो मन्द मुस्कान की स्मृति हमारी रक्षा करे ।।४।।

किमिदं कुरुषे वत्स, मृत्सासंवृन्मुखाम्बुजम् ।
स्वलंकृतं गंधतैल-कज्जलैः कंजलोचन ।।५।।

फिर दूसरी लीला की सुधि आई, कि यशोदाजी श्री ठाकुरजी से कहा रही है, कि हे वत्स ! हे कमल लोचन ! गन्ध, तेल तथा काजल सों अलंकृत अपने मुख में धूल क्यों लपेट रहे हो (धूल से आवृत क्यों करो हो) ।।५।।

किं नाश्रावि त्वया वेणु-स्वरः स्मरविकस्वरः ।
सदागतिगतिस्तम्भो, नगस्थिरगतिर्यतः ।।६।।

हे नाथ ! काम को उत्पन्न करवे वारो अपनो वेणु के स्वर आप क्यों नहीं सुनावो हो, जाके सुनवे सूँ जो गतिमान है, सो वृक्षवत् होय जाय है, और जो वृक्षवत् है, वह गतिमान होय जावै है, अर्थात् मधुधारा चुचाइवे लग जाय है, रोमाञ्च हो जाय है ।।६।।

किं त्वया मृग्यते कुंजे, तमः पुंजेम्बुजेक्षणे ।
त्वन्मनोमणिहर्ता यः, स इदानीं वनान्तरे ।।७।।

हे कमलनयनी ! जामें घोर अन्धकार व्याप्त होय रह्यौ है, ऐसे गहवर कुञ्ज में तुम क्या खोज रही हो, तुम्हारे मन रूपी मणि कौ हरण करवे वारौ जो है, सो इस समय में दूसरे वन में है, इसमें

नहीं है ॥७॥

करोति कमलाकान्तः, कामिनीकरुणाकरः।
यत्कृतं विकृतं नैव, कदाचिदपि कस्यचित् ॥८॥

कामियों पर भी कृपा करवे बारे कमलाकान्त ही करें हैं, और जिनकौ कियौ भयौ, काहु समय में काहू पर भी विकृत नहीं होय है, अर्थात् अखण्ड एक रस रहै है ॥८॥

सोऽस्मानवतु सर्वत्र, ददात्वभिमतं सदा।
यः प्रार्थितोभक्तजनैः, पपौ वह्निं दधौ गिरम् ॥९॥

ऐसे प्रभु सर्वत्र हमारी रक्षा करें, तथा सदा हमारे अभीष्ट को प्रदान करें, जो प्रभु भक्तों की प्रार्थना सों दावाग्नि कौ पान किये तथा गिरिराज को धारण करकें भक्तन कूँ इन्द्र की करी भई वृष्टि से बचाये ॥९॥

स्वविश्रान्तिस्थानं त्रिजगति विचिन्वन्त्यतिचिरा-
दतिश्रान्ताशीता-निलमभिलषत्यालि सुषमा।
शनैर्या नासाया-मकृत तदयं स्वेदजकण-
स्त्वदग्रे मुक्तावद्-विधुभुखि चकास्तेऽपि पतिषु ॥१०॥

हे चन्द्रमुखी सखी ! तीनों जगत् में बहुत काल सों अपने विश्रान्ति कौ स्थान ढूँढती भई अति श्रान्त हो गई हूँ, यासूँ है अलि ! शीतल सुखद वायु की अभिलाषा करती भई तुम्हारी नासिका के समीप में अपनों मुख कियौ सो हमारे मुख पर पसीना कौ बिन्दु तुम्हारी आगे ऐसौ प्रतीत होय है, जैसे सीप में मोती शोभित होवै है। अर्थात् हमारे मुख के ऊपर पसीना के जो बिन्दु मानो मोती है और तुम्हारी नासिका है, सो सीप है ॥१०॥

गणये कुचयोरेव, त्वत्परायणतां प्रिय।
त्वत्करस्पर्श समयं ज्ञात्वैवास्तां वहिस्फुटौ ॥११॥

हे प्रिय ! हमारे जो दोनों स्तन हैं, सो हम इनकी ही आपमें परायणता पूरी रूप सों गिनूँ हूँ, कारण कि आपके कमल को स्पर्श को समय जान करकें ये दोनों बाहर प्रगट होय गये नहीं तो तहाँ ताईं भीतर ही छिपे रहे हैं ॥११॥

प्रायः सत्पात्रतोत्कर्षो, यच्छोभायादुदारताम्।
दातर्यस्त एवानी-दनन्ते देयमुत्तमम् ॥१२॥

उदारता की शोभा तथा उत्कर्ष सत्पात्र में दान करवे सूँ ही प्राप्त होय है, और अनन्य जो दाता होय है, उनमें जो देय पदार्थ रहै है, जाकौ दान कियौ जाय है, वो भी उत्तम हो रहे हैं ॥१२॥

प्रादुर्भवति वकार-स्त्वदधरपीयूषदशनसंयोगात्।
तेनामृतवीजत्वं, युक्तं प्राणप्रिये तस्य ॥१३॥

हे प्राणप्रिय सखी ! तुम्हारे अधरामृत जब श्यामसुन्दर के दाँत कौ संयोग होयवे सूँ जो विकार प्रगट होय है, यासूँ ही विकार को अमृत को बीज रूप दोनों युक्त ही है ॥१३॥

मुहुर्गतागतज्ञान-स्नेहभावेषु तत् किणैः।
व्याप्तेष्वात्मादिषु ब्रीडा, मृद्वी तिष्ठेत्कथं यद ॥१४॥

स्नेह भावों में क्षण-क्षण में आयौ तथा गयौ, जो ज्ञान के कण से व्याप्त जो आत्मादिक वामें ब्रीड़ा (लज्जा) मृदवी कैसे रहती है कहो ? ॥१४॥

यथा यथा प्रियापांग-शरपातस्तथा तथा।
तदाभिमुख्यं भजसे, व्रजेश क्षत्रियोऽसि किम् ॥१५॥

हे व्रज के स्वामी ! जैसे-जैसे प्राणप्यारी का कटाक्षरूपी बाण आपको लगै है, तैसे-तैसे उनके सन्मुखता को ही आप स्वीकार करौ हो, सो कहा आप क्षत्री हो ? जैसे क्षत्री को जो संग्राम में बाण लगे हैं, सो आगे ही बढ़े हैं, पीछे नहीं हटे हैं, तैसे ही आप भी प्राण प्यारी के सन्मुख ही बढ़ो हो ॥१५॥

प्रियत्वदधरामृता-दतिविलक्षणा किं नु सा-
स्त्यहो नयननीलनी-रजयुते मदीयेतु यत्।
यदैव मम लोचने, त्वदधरं सुसंगच्छते,
तदैव मधुपावृतो, भवति नान्यदा सुन्दर ॥१६॥

हे प्रिय ! अंजन लगायवे सूँ नीलवर्ण के अंजन सूँ युक्त जो हमारे दोनों नेत्र सों आपके अधरामृत सों अति विलक्षण सो इनको कौन शासन करवे वारौ है। जब हमारे नेत्र और आपके अधर कौ संयोग होय है। हे सुन्दर ! तब ही आपके अधर भ्रमरण सों आवृत होय है, अन्य समय में नहीं ॥१६॥

श्रुत्युक्ता सान्सथा नैव, कर्त्तुं शक्येति चेतदा।
कंसादिकालवच्छक्त्या, तवैवेति वदाम्यहम् ॥१७॥

यदि श्रुतियों का कहा भया अन्यथा करवे कूँ शक्य नहीं है, तब कंसादिकों के भी कालरूप अन्यथा करवे कूँ आप ही शक्य हो, ऐसौ में कहूँ हूँ ॥१७॥

विजातीयजनाक्रान्ते, निजधर्मस्य गोपनम्।
देशे विधाय सततं, स्थेयमित्येव भासते ॥१८॥

विजातीय जनों से व्याप्त जो देश, अर्थात् जो देश में कोई भी अपने समान धर्म वारौ नहीं है, ऐसे देश में अपने धर्म को गुप्त

ही रखकर निरन्तर रहनों चाहिए, ऐसौ भासमान होय है ॥१८॥

सुस्थिरे नीलजलदे, स्थिरसौदामिनीयुते ।
स्थिरं मनो यदि भवेत्, स्थिरं भाग्यं तदैव हि ॥१९॥

सुस्थिर जो श्यामवर्ण कौ मेघ है, अर्थात् श्यामसुन्दर और सुस्थिर ही बिजुरी सों युक्त हैं, अर्थात् प्रियाजी रूपी बिजुरी सों युक्त हैं अर्थात् यह मेघ और उसकी बिजुरी दोनों चंचल होय है, और श्यामसुन्दर रूपी मेघ और प्रियाजी रूपी बिजुरी दोनों स्थिर हैं, चंचल नहीं हैं। यदि ऐसे सुस्थिर मेघ और बिजुरी में मन स्थिर हो जाय, फिर बाकी भाग्य भी स्थिर हो जाय है, अर्थात् जाकौ मन ऐसे श्री ठाकुरजी श्री प्रियाजी में स्थिर हो जाय हैं, फिर वाकौ भाग्य कभी चंचल नहीं होय है, सदा अखण्ड हो जाय हैं ॥१९॥

निवेदितात्मभिन्नेषु सदौदासीन्यमाचरेत् ।
प्रवाहिकास्तेपि चेत्स्यु-रुपक्षैवोचिता तदा ॥२०॥

जिनको आत्मनिवेदन नहीं भयौ है, उनमें सदा उदासीनता कौ ही व्यवहार करनों चाहिए। यदि प्रवाहिक हौ केवल संसरात्मक हो तो उनकी उपेक्षा करनो उचित है ॥२०॥

श्यामकंचुकनिदर्शनेनमन्-मानसेप्यणुतरेपि महान् सः ।
गोकुलैकजनजीवनमूर्ति-र्मास्यति स्वकृपयैव कृपालुः ॥२१॥

गोकुल वासियों की एक जीवन रूप ही है मूर्ति जाकी, ऐसे वह कृपालु अपने श्याम कंचुक का निदर्शन कराके अत्यन्त सूक्ष्म भी (अणु भी) हमारो मन यामें वो महान् भी होकर के अपनी कृपा सूँ ही निवास करेंगे ॥२१॥

शश्वत्पिपासितापांग-ध्यानावस्थितचेतसा।
प्राप्त तन्निजरूपाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥२२॥

निरन्तर अपनी प्राणप्यारी के कटाक्ष के ध्यान सों युक्त चित्त होयवे सूँ जो श्याम रूप को प्राप्त होय गये हैं, ऐसे जो गाय, गोपी, गोप सबन के राजा जो गोविन्द उनको बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥

सख्यादिवांबुजाश्लिष्ट, प्रियापांगैरिवार्च्चितः।
परिधाय वभौ नील-कंचुकं गोपिकापतिः ॥२३॥

जैसे मित्रता सूँ कमल के ऊपर भ्रमर आइके लिपट जाय है, तैसे श्री गोपिका के पति श्यामसुन्दर जब नीलकंचुकी धारण करे हैं, तब ऐसी शोभा होय है, कि कमल रूपी श्यामसुन्दर प्रियाजी के कटाक्ष रूपी भ्रमर सों पूजित होय रहे हैं ॥२३॥

राधागुणैः सहाविष्टे, माधवान्तर्हृदि स्मरे।
तत्र गन्तुमशक्तं तद्-यानं कणविलंव्यभूत् ॥२४॥

जब श्री राधिकाजी के गुणों के सहित कामदेव ने श्यामसुन्दर के हृदय में प्रवेश कियौ, तहाँ जाने को आशक्त उनकी यात्राकर्ण अवलम्बी भई ॥२४॥

ज्ञानेन साधनैश्चान्यैः, शून्यानस्मान्मुदा स्वयम्।
अनुगृह्णाति सोऽस्माकं, प्रभुः श्रीविट्ठलेश्वरः ॥२५॥

ज्ञान सूँ अथवा अन्य साधन शून्य जो मैं सो मेरे ऊपर स्वयं हमारे प्रभु श्री विट्ठलेश्वर प्रसन्नता सूँ अनुग्रह करेंगे ॥२५॥

एके कर्मप्रवृत्ताः, सततमिहपरे, भक्तिपूर्णार्द्रचित्ताः।
केचिज्ज्ञानैकनिष्ठाः, प्रभुचरणनम-स्यार्तवृत्तौघवित्ताः ॥

तन्तन्निष्ठाविहीनं, जगदुदधिपयः, संसृतौदीनमीनं-
मा कश्चित्कृष्णहेतुः, कृपयितुमिह ते, वल्लभीया ममेति ।।२६।।

इस संसार में कोई जीव जो ऐसे हैं जो कर्म मार्ग में ही निरन्तर प्रवृत्त भये हैं, और कोई ऐसे हैं जो भक्ति से ही पूर्ण तथा आर्द्र चित्त होय रहे हैं, और कोई ऐसें हैं, जो ज्ञान रूपी धन सूँ ही सुखी होय रहे हैं, तो कोई प्रभु चरण में नमस्कार करके ही आर्द्र वृत्ति सूँ सुखी होय रहे हैं। इन सब निष्ठाओं से विहीन तथा दीन मलीन रूप पड़े हुए जो हम हैं, सो कोई भी कृष्ण की कृपा कौ हेतु नहीं है। कारण कि आप पहिले आज्ञा कर चुके हैं, कि वल्लभीय जन मेरे हैं। यासूँ ही प्रभु कृपा करेंगे ।।२६।।

।। इति श्री विट्ठलेशप्रभु विरचित नवम् विज्ञप्ति समाप्तम् ।।

* * *